ग्रेट ब्रिटेन की शासन-पद्धति

[समस्त भारतीय विश्वविद्यालयों के स्नातक कक्षाओं के लिए प्रश्न
और उत्तर के माध्यम से लिखी गई सर्वोत्तम पुस्तक]

(संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण)

लेखक
प्रो० प्रियदर्शी एम० ए०

स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स
३, विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद—२

प्रकाशक
स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स
इलाहाबाद

मूल्य : ४·५० रुपये मात्र
मुद्रक : गणेश प्रिंटिंग प्रेस, कीटगंज, इलाहाबाद—३

सहायक पुस्तक
के रूप में
सर्वश्रेष्ठ रचना

आमुख

'ग्रेट ब्रिटेन की शासन-पद्धति' का यह नवीन संस्करण आपके हाथों में है। पहले संस्करण का विद्यार्थी-जगत ने जिस प्रकार स्वागत किया, उसके लिए लेखक उनका आभारी है। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के प्रकाश में इस संस्करण को पूर्णतया संशोधित और परिष्कृत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में ब्रिटिश शासन-व्यवस्था पर उपलब्ध अद्यतन रचनाओं और सामग्री का उपयोग किया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह संस्करण विद्यार्थियों के लिए और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

—प्रियदर्शी

विषय-सूची

ब्रिटिश संविधान की पृष्ठ भूमि

अध्याय १

ब्रिटिश संविधान का स्वरूप

अध्याय २

अभिसमय (राजनैतिक प्रथाएँ)

पृष्ठ

अध्याय ३

ब्रिटिश सम्राट

सम्राट पद : उपयोगिया और स्थायित्व के कारण

अध्याय ४

मंत्रि परिषद्

पृष्ठ

अध्याय ५

प्रधान मन्त्री

अध्याय ६

लार्ड सभा

अध्याय ७

लोक सभा

विधि-निर्माण की प्रक्रिया

पृष्ठ

ब्रिटिश संविधान की पृष्ठभूमि

यूरोप के उत्तर-पश्चिम अटलाण्टिक महासागर में लगभग ९४,३०० वर्ग-मील क्षेत्र में फैला हुआ ब्रिटिश द्वीप समूह है। इसकी जनसंख्या लगभग ६ करोड़ है। यूरोप समुद्र-तट और ब्रिटिश द्वीप समूह के पश्चिम में अटलांटिक महासागर है, जिसके दूसरी ओर अमेरिका है। इंगलिश चैनल ब्रिटिश द्वीप समूह को यूरोप महाद्वीप से अलग करता है। संसार के दो महाद्वीप यूरोप और अमेरिका के बीच में स्थित होने के कारण ब्रिटिश द्वीप समूह संसार के मानचित्र में अपना अनूठा स्थान रखता है। चारों ओर समुद्र से घिरे होने के कारण इंगलैण्ड अपनी मौलिकता को संजोए रखने में समर्थ हुआ है।* इस विशिष्ट भौगोलिक परिस्थिति ने इंगलैण्ड की विदेशी आक्रमणकारियों से रक्षा की है, उसको स्वतन्त्र रूप से अपने राजनैतिक-सामाजिक स्वरूप को विकसित करने का अवसर दिया है। चारों ओर के समुद्र ने उसकी खाई का कार्य कर उसको एक समुद्री शक्ति के रूप में विकसित होने में योग दिया है। उसकी जलवायु ने उसके निवासियों को परिश्रमी और उद्यमी बनाया है। उसके प्राकृतिक साधनों ने उसकी समृद्धि का द्वार खोला है। इन सब के समन्वित प्रभाव ने उसे संसार की एक महाशक्ति के रूप में विकसित होने में योग दिया है।

ब्रिटेन के प्राचीन निवासी—जब भारत और चीन, जैसे पूर्वीय देश सभ्यता के आलोक में निखर रहे थे, उस समय इंगलैण्ड असभ्यता के तिमिर में भटक रहा था। घने जंगलों, दलदल इत्यादि से आवृत्त यह क्षेत्र असभ्य और बर्बर जातियों का क्रीड़ास्थल था। धीरे-धीरे सभ्यता के सूर्य का प्रकाश इन जनजातियों पर पड़ा। ये लोग अन्य जातियों के सम्पर्क में आने लगे। ईसा से लगभग ७०० वर्ष पूर्व एक नई गोरे रंग की जाति का इंगलैण्ड में पदार्पण हुआ। इस जाति ने पहले के निवासियों पर विजय प्राप्त कर उन्हें भगा दिया। यह नई जाति इतिहास में केल्ट

---

* इस प्रसंग में शेक्सपियर की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :—

This precious stone set in a silver sea.

Which serves it in the office of a wall, lands or as a moat defensive to a house. Against the envy of less happier lands.

(Celt) के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी कई शाखाएँ थीं। आयरलैण्ड में बसने वाली शाखा स्काट, ब्रिटेन के उत्तर में बसने वाली शाखा पिक्ट (Picts) और ब्रिटेन के दक्षिण में बसने वाली शाखा ब्रिटेन (Britons) कहलाती थी। ये लोग सभ्यता के पथ पर थे। कृषि, पशुपालन इत्यादि के द्वारा ये अपना जीविकोपार्जन करते थे। इसके साथ ही व्यापार भी उनके जीवन का मुख्य अंग बन गया था। कालान्तर में जब रोम में रोमन साम्राज्य की स्थापना हुई तब रोम के निवासियों ने इंगलैण्ड पर आक्रमण किया, कुछ प्रयास के उपरान्त इंगलैण्ड के दक्षिणी भाग पर उनका आधिपत्य स्थापित हो गया। रोमन विजय ने इंगलैण्ड के निवासियों के जीवन को पूरी तरह प्रभावित किया। जब रोम पर बर्बर जातियों के आक्रमण हुए तब रोम निवासी इंगलैण्ड छोड़ कर चले जाने के लिये बाध्य हुए। रोमन लोगों के चले जाने के उपरान्त ब्रिटेन में जिन अन्य आक्रान्त जातियों का पदार्पण हुआ उन जातियों में जूट (Jutes), सेक्सन (Saxons) तथा आंग्ल (Angles) मुख्य हैं। इन आक्रमणकारियों में आंग्ल लोगों की संख्या अधिक थी और ये लोग ब्रिटेन के दक्षिणी भाग में बसे थे, अतः इस भाग का नाम इंगलैण्ड पड़ा और इनके निवासी अँग्रेज (English) कहलाये। इंगलैण्ड का पूरा नाम 'यूनाइटेड किंगडम आफ ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड' (United Kingdom of Great Britain and Ireland) है।

इंगलैण्ड के संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रत्येक संविधान अपने देश के इतिहास की उपज होता है। ब्रिटिश संविधान भी इसका अपवाद नहीं है। वास्तव में ब्रिटेन का अलिखित इतिहास संवैधानिक विकास की लम्बी युग-यात्रा से गुजरा है। इस युग-यात्रा में उसने अनेक मोड़ लिए हैं, अनेक तथ्यों ने उसके विकास-क्रम को प्रभावित किया है। अतएव ब्रिटिश संविधान के स्वरूप को समझने के लिये उसकी इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस संवैधानिक विकास-क्रम को हम निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं :—

(१) **एंग्लो-सैक्सन युग** (Anglo-Saxon Period)—इंगलैण्ड के इतिहास का यह युग एंग्लो-सैक्सन युग के नाम से प्रख्यात है। इस युग का प्रारम्भ पाँचवीं शताब्दी से होता है। यही युग वस्तुतः अँग्रेजों की वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था का प्रारम्भ-बिन्दु है। राजनैतिक दृष्टि से इस युग की दो मुख्य देन थीं—राजतंत्र और स्वायत्त शासन। इस समय जिस राजतंत्र का उदय हुआ वह वंशानुगत नहीं होता था। राजा निर्वाचित होता था। निर्वाचन का यह कार्य एक सभा करती थी जिसे बुद्धिमानों की सभा विटनाजेमुट (Witena-

gemot) कहते थे। सम्राट का निर्वाचन करने के अतिरिक्त इस सभा का अन्य कार्य प्रशासन करना था। इस सभा का शासन और सम्राट पर अच्छा प्रभाव रहता था जिसके परिणामस्वरूप सम्राट कभी भी स्वेच्छाचारी नहीं हो पाता था। वस्तुतः यह पद्धति इंगलैण्ड में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना करती है।

एंग्लो-सैक्सन युग की दूसरी देन स्वायत्तशासी संस्थाओं का विकास था। स्वायत्त शासन की तीन प्रमुख इकाइयाँ थीं: 'टाउनशिप' (Township), हंड्रेड (Hundred) तथा शायर (Shire)। डा० मनरो ने इन संस्थाओं के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि इन संस्थाओं की मुख्य तीन देनें थीं: प्रथमतः ये संस्थाएँ एक समान सारे देश में फैली हुई थीं जिससे सारे देश में एक राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार हुआ। दूसरे, इन संस्थाओं ने अँग्रेजों को स्वायत्तता का पाठ पढ़ाया। तीसरे, इन संस्थाओं ने प्रतिनिधि-प्रथा का प्रवर्तन किया। इस प्रकार इन संस्थानों ने इंगलैण्ड में लोकतंत्र का प्रवर्तन किया। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए ब्लैक्स्टन (Blackstone) नामक प्रख्यात आंग्ल विद्वान ने लिखा है:

"The Liberties of England may be ascribed above all things to her free local stitutions. Since the days of their Saxon ancestors her sons have burned at their own gates the duties and responsibilites of citizens." **—Blackstone.**

(२) **नार्मन एंजाविन युग**— ब्रिटिश संविधान के विकास का दूसरा प्रमुख अध्याय नार्मन एंजाविन युग (Norman-Angevin period) के नाम से प्रख्यात है। १०६६ ई० में नार्मण्डी के विलियम (William of Normandy) ने आंग्ल शासक राजा हेरल्ड (King Harold) को पराजित किया। विलियम की विजय ने एंग्लो-सैक्सन युग का अन्त कर नार्मन एंजाविन युग का प्रवर्तन किया। इस युग में कई राजा हमारे सामने आते हैं। इस युग के राजाओं की प्रमुख विशेषता यह थी कि ये लोग स्वेच्छाचारी या निरंकुश शासक होते थे। इनका चर्च पर पूरा प्रभाव था। इस युग में सामन्तों की शक्ति का दमन किया गया। एंग्लो-सैक्सन काल में विटान नाम से प्रख्यात राजा को परामर्श देने वाली संस्था इस युग में 'मैग्नम कांसीलियम' (Magnum concilium) कहलाने लगी। मैग्नम कांसीलियम का अर्थ बड़ी काउंसिल होता है। इसके अतिरिक्त इससे एक अन्य छोटी परिषद् का विकास हुआ जिसे 'क्यूरिया रेजिस' (Curia Regis) कहते थे।

राजनैतिक दृष्टि से एंजाविन युग की एक महत्वपूर्ण घटना राजा जान द्वारा महान आज्ञा-पत्र (Great charter) का पास किया जाना है। इस आज्ञा-पत्र का इंगलैण्ड के संवैधानिक इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। विलियम स्टब्स

नामक एक विद्वान ने इस आज्ञा-पत्र के विषय में विचार करते हुए कहा है कि यह आज्ञा-पत्र ब्रिटेन के समस्त संवैधानिक विकास की एक व्याख्या है।

(३) **संसद का जन्म और विकास**—संसद या ब्रिटिश पार्लमिन्ट को उत्पत्ति के निश्चित समय के विषय में कुछ कहना कठिन है। अनेक विद्वानों के अनुसार इसका प्रारम्भ नार्मन युग की वृहत् सभा (Magnum concilium) से मानते हैं। कालान्तर में पार्लमिन्ट का विकास होता गया। इस विकास-यात्रा में उसने निरन्तर अपनी शक्ति का विकास किया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक संसद शक्ति सम्पन्न हो गई और राजा की शक्ति मर्यादित होती गई। ट्यूडर राजवंश के समाप्त होने पर स्टुअर्ट राजवंश का प्रारम्भ हुआ। स्टुअर्ट राजाओं के शासन-काल में संसद और सम्राट के संघर्ष ने नया मोड़ लिया। स्टुअर्ट शासक राजा के दैवी अधिकारों में विश्वास करते थे। जनता और संसद इसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। १६८८ ई० में गौरवपूर्ण क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति ने राजा की संप्रभुता का सदा के लिये अन्त कर दिया। स्टुअर्ट राजवंश के स्थान पर नए राजवंश हैनोवर राजवंश की स्थापना हुई। इन राजाओं के शासन-काल में संवैधानिक या सीमित राजतंत्र, संसदीय प्रमुखता और मंत्रिमन्डल-पद्धति का विकास हुआ। संसदीय और लोकतांत्रिक संस्थाओं का आज भी विकास चल रहा है।

अध्याय | १

ब्रिटिश संविधान का स्वरूप

अंग्रेजों ने अपने संविधान के विभिन्न अंगों को वहीं छोड़ दिया जहाँ इतिहास की तरंग ने उन्हें लाकर डाल दिया है। उन्होंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इन टुकड़ों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाय या उनका वर्गीकरण किया जाय अथवा यदि कोई न्यूनता हो तो उसकी पूर्ति कर ली जाय। —**बाटमी**

इंगलैंड का शासन सैद्धान्तिक दृष्टि से निरंकुश राजतंत्र और यथार्थतः लोक-तंत्रात्मक गणराज्य है। —ऑग

ब्रिटिश संविधान की विशेषताएँ

प्रश्न १—ब्रिटिश संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

आधुनिक संसद पद्धति की जन्मभूमि ग्रेट ब्रिटेन की सुरम्य स्थली प्रतिनिधिक प्रशासन-संस्थाओं की उद्भावना के लिए सदा से विश्रुत रही है। अविच्छिन्न राज-नैतिक परम्परा, चिरभूत राजनैतिक संस्थान, सशक्त संसद, परिसीमित, राजतन्त्र निर्बंध या विधिसम्मत शासन, अलिखित एवं नमनशील संविधान जैसी विशेषताओं के कारण ग्रेट ब्रिटेन के संविधान की गणना संसार के महानतम संविधानों में की जाती है। उसे संसार के सर्वाधिक पुरातन संविधान होने का गौरव प्राप्त है। ऐसी ही विशेषताओं से समलंकृत होने के कारण राजमनीषियों ने इसकी बहुविधि प्रशंसा की है। विश्व के इस अनूठे संविधान की विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं :—

(१) एक अलिखित संविधान—ब्रिटिश संविधान की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता यह है कि यह मूलतः एक अलिखित संविधान है। भारत या अमेरिका के संविधान की भाँति ब्रिटिश संविधान का कोई समन्वित रूप सुलभ नहीं है जिसमें संविधान के समस्त नियमों को प्रमाणिक रूप में एकत्र करने का प्रयास किया गया हो। ब्रिटिश संविधान की इस विशेषता के कारण डि टॉकेबिल तथा टॉमस पेन जैसे राजविज्ञों ने यहाँ तक कह डाला था कि ब्रिटिश संविधान जैसी कोई वस्तु नहीं है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है परन्तु इन राजविज्ञों की धारणा भ्रान्तिमूलक थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश संविधान के विविध नियमों एवं उपबन्धों को एक स्थान पर संजोकर लेखबद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया जैसा कि बाटमी ने एक स्थल पर लिखा था—'अँग्रेजों ने अपने संविधान के विभिन्न भागों को वहीं छोड़ दिया जहाँ इतिहास की लहर ने उन्हें लाकर डाल दिया है। उन्होंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इन टुकड़ों को एक स्थान पर एकत्रित कर लिया जाय या उनका वर्गीकरण किया जाय और यदि कभी कोई दिखाई पड़े तो उसकी पूर्ति कर ली जाय।'

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रिटिश संविधान पूर्णतया अलिखित है। वस्तुतः संवैधानिक अभिसमयों को छोड़कर ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्य उपबन्ध लिखित ही हैं। मैग्ना कार्टा (Magna Carta), पेटीशन ऑफ राइट्स

(Petition of Rights), हैबियस कॉर्पस एक्ट्स (Habeas Corpus Acts), बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights), एक्ट ऑफ सेटलमेण्ट (Acts of Settlement), एक्ट ऑफ यूनियन विद स्काटलैंड़ (Act of Union with Scotland), लोकल गवर्नमेण्ट एक्ट (Local Government Act), १८७५, १८७६, १८६४ तथा १६११ और १६४६ ई० के पार्लियामेण्ट एक्ट्स (Parliament Acts of 1875, 1876, 1894, 1911 and 1949) इत्यादि ब्रिटिश संविधान के लिखित अंग ही हैं।

(२) **विकसित संविधान**—ब्रिटिश संविधान की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि वह एक विकसित संविधान है। सुप्रसिद्ध विज्ञान-शास्त्री **मनरो** के शब्दों में इंगलैंड का संविधान एक पूर्ण वस्तु नहीं है प्रत्युत वह विकास की एक अनवरत प्रक्रिया है। वह संयोग एवं संयोजना का शिशु है जिसका मार्ग कभी संयोग और कभी उत्कृष्ट परियोजना द्वारा निर्देशित हुआ है। इस प्रकार ब्रिटिश संविधान एक लम्बे विकास का प्रतिफल है। भारतीय या अमेरिका के संविधान की भाँति ब्रिटिश संविधान के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक समय में अमुक स्थान पर अमुक व्यक्तियों द्वारा उसका सृजन हुआ। ब्रिटिश जाति ने अत्यन्त रूढ़िप्रियता के कारण कभी भी संविधान का आमूलतः न तो परिवर्तन किया है और न मूलरूप में ही रखने का प्रयास किया है। गत सत्रह वर्षों की दीर्घकालावधि में उसने आवश्यकतानुसार संविधान में परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है। **ऑग** के शब्दों में 'इंगलैंड में परिवर्तन इतने शनैः-शनैः हुए हैं, परम्परा का मोह इतना स्वाभाविक रहा है और नामों एवं प्रणालियों के प्रति प्रेम उस समय में भी जब कि चेतना पूर्णतया परिवर्तित हो गई थी इतना सबल रहा है कि ब्रिटेन का संवैधानिक इतिहास एक अनूठी चिरन्तनता की अभिव्यक्ति करता है।'

(३) **नमनशील संविधान**—संविधान की उपरोक्त दोनों विशेषताओं से ही सम्बद्ध उसकी तीसरी विशेषता है उसकी नमनशीलता। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, भारत और सोवियत रूस जैसे लिखित संविधान वाले देशों में संविधान में संशोधन की एक विशेष प्रक्रिया है। परन्तु ब्रिटिश संविधान में संसद जब चाहे तभी संशोधन कर सकती है। नमनशील होने के कारण यह किसी भी समय जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है, उसकी आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे सकता है।

(४) **एकात्मक प्रशासन**—ब्रिटिश संविधान भारत या अमेरिका की भाँति संघात्मक संविधान नहीं है, प्रत्युत वह एकात्मक प्रशासन का जीवन्त उदाहरण है। यहाँ केन्द्रीय सरकार के हाथ में शासन की सारी सत्ता केन्द्रित है। स्थानीय स्व-

शासित संस्थाओं को अवश्य कुछ अधिकार दिये गये हैं। परन्तु ये अधिकार प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये हैं। ये संस्थाएँ केवल उन्हीं शक्तियों का उपभोग करती हैं, जो संसद द्वारा पारित अधिनियमों के अनुसार उनको मिली हैं।

(५) सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विभेद—ब्रिटिश संविधान अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। इसके सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक क्रिया-कलापों में मौलिक विभेद पाया जाता है। इसका कारण ब्रिटिश जाति की रूढ़िवादिता है। उसने समयानुकूल संविधान के व्यवहार-पक्ष में परिवर्तन कर लिया है परन्तु संविधान की भाषा तथा उसकी सिद्धान्त-योजना पूर्ववत् ही बनी रही है। उदाहरणार्थ इंगलैण्ड में पूर्ण, सुव्यवस्थित एवं आदर्श प्रजातन्त्र है, किन्तु सैद्धान्तिक रूप में वहाँ आज भी राजतांत्रिक प्रशासन की प्रतिष्ठा है। अभी भी सम्राट का पद वंशाक्रमानुगत है। सभी कार्यों का सम्पादन केवल सम्राट के ही नाम पर किया जाता है। सभी मंत्री तथा उच्च पदाधिकारी सम्राट के ही सेवक या अनुचर कहलाते हैं, न्यायालय, सेना, कोष, जलयान तथा प्रजा सभी कुछ सम्राट की ही कही जाती है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सम्राट एक निष्क्रिय सत्ता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उसके नाम पर सम्पूर्ण कार्य पार्लियामेंट द्वारा किये जाते हैं। इसी प्रकार पार्लियामेंट सैद्धान्तिक सत्ता है। परन्तु व्यावहारिक शक्ति मन्त्रि-परिषद् में निहित रहती है। इस प्रकार ब्रिटिश संविधान में व्यवहार तथा सिद्धान्त में पर्याप्त अन्तर है। इस अन्तर को ठीक प्रकार से हृदयंगम किये बिना इंगलैंड के शासन-सूत्र का आभास मिलना कठिन है। जैसा कि **ऑग** और **जिंक** ने लिखा है : 'सिद्धान्त और व्यवहार में समस्त प्रशासन-प्रणालियों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। परन्तु उन संविधानों में वह उस रूप से उनका अभिन्न अंग नहीं है जिस रूप से कि वह इंगलैंड में पाया जाता है।'

'There are plenty of centrasts between theory and practice in all governments. But in none do they form the very warp and roof of the system as in the British.

—**Ogg & Zink.**

(६) सशक्त संसद-पद्धति—इंगलैंड के संविधान में संसदीय संप्रभुता का विशेष महत्व् हैं। सच्चे अर्थों में संसद ही ग्रेट ब्रिटेन का शासन-सूत्र सुव्यवस्थित किया करती है। इंगलैंड में द्विसदनीय संसद पद्धति है। इस द्विसदनात्मक परम्परा का अनुसरण विश्व के अनेक प्रजातंत्रात्मक राज्यों ने किया है। यही कारण है कि इसे संसदों की जननी कहा जाता है। इंगलैंड में संसद से बढ़कर कुछ भी नहीं है। संविधान अलिखित होने के कारण कोई संसदीय संप्रभुता को चुनौती नहीं दे सकता

है। रेम्जे म्योर का कथन है कि यदि शक्ति का पृथक्करण ही अमेरिकन संविधान का मुख्य संविधान है, तो उत्तरदायित्वों का केन्द्रीयकरण ब्रिटिश संविधान की विशेषता है। संसद संविधान में परिवर्तन कर सकती है। किसी भी नूतन विधि का सृजन वह कर सकती है। कोई भी उसको रोक नहीं सकता है, क्योंकि इंगलैंड में संसदीय सरकार है। संसद में उस दल का मन्त्रिमण्डल बनता है जिसका बहुमत होता है। मन्त्रिमण्डल तब तक कार्यरत रह सकता है जब तक कि सदन का विश्वास उसे प्राप्त रहता है। यदि अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो प्रधान मन्त्री या तो संसद का विघटन करवा देता है अथवा मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे देता है। इसीलिये सभी मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। वस्तुतः इंगलैंड की सरकार में सर्वाधिक सत्तावान तथा शक्ति सम्पन्न संसद ही है। इसी की सशक्त संसद का अनुगमन पूर्ण विश्व ने किया है।

(७) **अवरोध तथा सन्तुलन**—ब्रिटिश संविधान में अवरोध तथा सन्तुलन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। एक ही शक्ति का विरोध दूसरे से होता है। जैसे संसद के दोनों सदन विधियों को पारित करते हैं। सम्राट उन पर अपने हस्ताक्षर करके उनको कानून का रूप देता है परन्तु सम्राट के हस्ताक्षर बिना संसद द्वारा पारित किसी भी विधि को कानून का रूप नहीं प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार सम्राट का कोई भी आदेश या कानून तब तक प्रमाणित नहीं होता, जब तक कि संसद की स्वीकृति उस पर नहीं मिल जाती है। इसीलिए विद्वानों का मत है कि इंगलैंड के संविधान में निरोध तथा संतुलन का सिद्धान्त पूर्णतया प्रतिष्ठित है। निरोध संतुलन का सिद्धान्त प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है। बहुमत प्राप्त मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध यदि अविश्वास का प्रस्ताव पारित किया जा सकता है, तो प्रधान मन्त्री संसद का विघटन करा सकता है। इसी प्रकार न्यायाधीशों की नियुक्ति मन्त्रि-परिषद् द्वारा होती है परन्तु एक बार नियुक्त हो जाने पर परिषद् द्वारा पुनः वे न्यायाधीश पदच्युत नहीं किये जा सकते हैं।

(८) **विधि-राज्य**—इंगलैंड के संविधान में राज्य का विशिष्ट स्थान है। कोई भी व्यक्ति कानून से परे नहीं है। सभी को समान अधिकार, सुरक्षा तथा स्वतंत्रता उपलब्ध है। किसी भी व्यक्ति को जाति, पद, प्रतिष्ठा के आधार पर वैधानिक दंड-विधान से मुक्ति नहीं मिल सकती है। सभी के साथ समान न्याय करने का ही कानून है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि नागरिकों के अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख या विवरण कहीं नहीं मिलता है। भारत तथा अमेरिकन जैसे लिखित संविधानों में नागरिकों के मूलाधिकारों का प्रकट उल्लेख मिल जाता है किन्तु इंगलैंड के नागरिकों

के अधिकार परम्परागत सुरक्षित हैं। नागरिक अधिकारों ने एक प्रकार से संविधान को ही नियमित किया है। 'बिल ऑफ राइट्स' इसी का उदाहरण है।

(९) अभिसमय जन्य संविधान—ब्रिटिश संविधान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें अभिसमयों का विशेष महत्व है। इसका प्रधान कारण उसका अतिरिक्त स्वरूप है। अतिरिक्त होने के कारण युग एवं आवश्यकतानुसार अनेक समयों की उद्भावना हो गई। डा० आइवर जैनिंग्स के शब्दों में यह संवैधानिक अभिसमय ब्रिटिश संविधान की सूखी अस्थियों को मांसल परिधान देते तथा संविधान को क्रियान्वित कर उत्तरोत्तर विकसित विचारों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

(१०) मिश्रित संविधान—कतिपय संविधान-मनीषियों के अनुसार ब्रिटिश संविधान एक मिश्रित संविधान है। वह राजतंत्र, अभिजात्य-तंत्र एवं लोकतंत्र का समन्वित स्वरूप है। परन्तु इस प्रसंग में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रधानतया ब्रिटिश संविधान लोकतंत्रात्मक है। साम्राज्ञी तो केवल वैधानिक प्रधान है। वास्तविक सत्ता तो मन्त्रिमण्डल के हाथों में है जो अपने कार्यों के लिए लोकसभा के सम्मुख उत्तरदायी है। इसीलिए ऑग महोदय ने एक स्थल पर कहा है कि 'ब्रिटिश शासन सैद्धान्तिक दृष्टि से निरंकुश राजतंत्र, देखने में मर्यादित राजतंत्र और यथार्थतः लोकतंत्रात्मक गणराज्य है।'

(११) सुविकसित दलीय पद्धति—ब्रिटिश संविधान देश में संसद-पद्धति की सरकार की स्थापना करता है और संसद-पद्धति की सरकार के लिये दलगत राजनीति का होना आवश्यक होता है। इस नाते ब्रिटिश संविधान की अन्य प्रमुख विशेषता उनकी दलीय पद्धति है। निर्वाचन में, मन्त्रिमण्डल के निर्माण में, विरोधी दल के संगठन में राजनैतिक दलों का अपना योग रहता है। वहाँ दलों का कार्य निर्वाचन के उपरान्त ही समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्युत संसद में निरन्तर साम्राज्ञी की सरकार तथा साम्राज्ञी के विरोधी दल में वाक्-युद्ध चला करता है। इंगलैंड द्वितीय पद्धति का उत्कृष्टतम उदाहरण है।

निष्कर्ष— ब्रिटिश संविधान की उपर्युक्त विशिष्टताओं के विवेचन से उसके स्वरूप एवं महत्व का यत्किंचित आभास मिल जाता है। वस्तुतः ब्रिटिश संविधान अनोखा संविधान है जो सुविशद् वट वृक्ष की भाँति अपने स्थान पर अविचल है। उसे विचलित करने के लिए अनेक झंझावत उठे, अनेक बवण्डर आये, किन्तु काल के थपेड़ों से वह क्लान्त न हुआ। ब्रिटेन की गौरवपूर्ण राजनीतिक परम्पराओं को अपने अंचल में समेटे युगों से वह ब्रिटिश जनजीवन को अपनी स्निग्ध छाँह प्रदान करता रहा है। उसकी स्निग्ध छाँह में ब्रिटिश जनजीवन के पुष्पित, पल्लवित होने में कोई कठिनाई नहीं हुई। यही कारण है कि उसे विश्व के सर्वाधिक पुरातन एवं महानतम

राजनीतिक व्यवस्था के रूप में समादृत किया गया है। उसे मानव जाति की अमूल्य निधि की संज्ञा दी गई है। संसार के प्रायः सभी लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणालियों ने उसके कतिपय राजनैतिक संस्थानों को अपनाकर लाभ उठाया है। आज भी यह कितने राष्ट्रों के लिये श्रेय, प्रेय और पाथेय है।

सारांश

विश्व के संविधानों में ग्रेट ब्रिटेन के संविधान की स्थिति अद्वितीय है। उसे संसार के पुरातन संविधान होने का गौरव प्राप्त है। राजमनीषियों ने उसकी बहुविधि प्रशंसा की है। उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं :—

(१) वह एक अलिखित संविधान है।
(२) वह एक विकसित संविधान है।
(३) वह एक लचीला एवं नमनशील संविधान है।
(४) वह एकात्मक प्रशासन का ज्वलन्त उदाहरण है।

(५) उसमें सिद्धान्त और व्यवहार में विशाल अन्तराल है। ग्रेट ब्रिटेन में कोई बात जैसी दिखाई देती है वैसी नहीं है और जैसी है, वैसी दिखाई नहीं देती।

(६) ब्रिटेन में सशक्त संसद-व्यवस्था, उसकी वैधानिक, न्यायिक एवं प्रशासनिक सत्ता सर्वोपरि है।

(७) अवरोध तथा सन्तुलन का सिद्धान्त उसकी अन्य विशेषता है।

(८) ब्रिटिश संविधान की अन्य प्रमुख विशेषता विधि-सम्मत शासन की सर्वोपरिता है। इसके अनुसार छोटे-बड़े, धनी-निर्धन सभी व्यक्ति कानून की दृष्टि में समान हैं।

(९) ब्रिटेन को अभिसमयों का क्लासिक लैंड कहा जाता है। ब्रिटेन के अलिखित एवं विकसित संविधान में अभिसमयों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

(१०) ब्रिटिश संविधान एक मिश्रित संविधान है। वह सैद्धान्तिक दृष्टि से निरंकुश राजतन्त्र, देखने में मर्यादित राजतन्त्र और यथार्थतः लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। वस्तुतः वह राजतंत्र, अभिजात्यतन्त्र एवं प्रजातन्त्र का समन्वित स्वरूप है।

(११) ब्रिटिश संविधान की अन्य प्रमुख विशेषता द्विदलीय पद्धति है। ब्रिटेन द्विदलीय पद्धति का उत्कृष्टतम उदाहरण है।

(१२) ब्रिटिश संविधान की इन विशेषताओं के अतिरिक्त कतिपय अन्य विशेषताओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से मुख्य निम्नांकित हैं :—

१—ब्रिटिश संविधान प्रगतिशील एवं अनुदार तत्वों का समन्वित स्वरूप है। २—ब्रिटिश संविधान में आनुवंशिकता का तत्व, ३—सीमित राजतन्त्र, ४—दायित्व का सकेन्द्रण, ५—सबसे पुरातन संविधान, ६—न्यायाधीशों द्वारा निर्मित संविधान।

क्या ब्रिटिश संविधान का कोई अस्तित्व है ?

प्रश्न २— क्या ब्रिटिश संविधान का कोई अस्तित्व है ?

परिचय सूत्र—ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था को विश्व की महानतम राजनीतिक व्यवस्था के रूप में समादृत किया गया है। उसे मानव-जाति की अमूल्य निधि की संज्ञा दी गई है। उसकी संसद को अन्य संसदों की जननी के नाम से अभिहित किया गया है। वह संसार का सबसे प्राचीन संविधान माना जाता है। ब्रिटिश जाति को भी अपने संविधान पर गर्व है, किन्तु यदि आप गणतन्त्र भारत, फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की भाँति ब्रिटिश संविधान की कोई मौलिक कृति प्राप्त करना चाहें तो आपको निराश होना पड़ेगा। इसका प्रधान कारण यह है कि संविधान प्रधानतया अलिखित संविधान है। भारत या अमेरिका के संविधानों की भाँति एक समय में एक स्थान पर उसका सृजन नहीं हुआ। वह तो एक लम्बे ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल है। ब्रिटिश संविधान के इस अलिखित स्वरूप के कारण ही एक समय कतिपय राजविज्ञों ने यहाँ तक कहना प्रारम्भ कर दिया था कि ब्रिटिश संविधान का कोई अस्तित्व ही नहीं है। ऐसे विचारकों में **टॉमस पेन** तथा **डी टोकियावेली** मुख्य थे।

टॉमस पेन तथा डी टोकियावेली के विचार—प्रख्यात ब्रिटिश राजविज्ञ एडमण्ड बर्क ने ब्रिटिश संविधान का पूर्ण स्वस्ति वादन किया था। इसके उत्तर में टॉमस पेन ने बर्क महोदय के समक्ष यह प्रश्न किया कि क्या बर्क महोदय अँग्रेजी के संविधान की कोई प्रति उपस्थित कर सकते हैं ? यदि नहीं तो हमें यह निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनाई नहीं कि ब्रिटेन में संविधान जैसी वस्तु का न तो अस्तित्व है और न कभी था। नागरिक गणतंत्र की सुरक्षा केवल लिखित संविधान में ही सम्भव है अतएव उनकी दृष्टि में उसी संविधान को संविधान नाम से अभिहित किया जा सकता है जो लिखित रूप में विद्यमान है। **टामस पेन** की भाँति **डी टोकियावेली** का भी यही विचार था। टोकियावेली को इस तथ्य से बड़ा आश्चर्य होता था कि ब्रिटिश संसद बिना किसी विशेष प्रक्रिया के संविधान के स्वरूप में परिवर्तन कर सकती है। उसके अपने देश फ्रांस में ऐसा सम्भव नहीं था। अतएव उसका ऐसा विश्वास था कि इंगलैंड के संविधान का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

इन दोनों विद्वान् विचारकों के आरोपों की क्या पृष्ठभूमि थी, यह दूसरी ही

बात है। किन्तु इतना निर्विवाद है कि ये आरोप निराधार थे, इन मनीषियों की धारणाएँ भ्रान्तिमूलक थीं। सर्वप्रथम केवल अलिखित होने के कारण ही यह निष्कर्ष निकाल लेना कि संविधान का अस्तित्व ही नहीं है, समीचीन नहीं प्रतीत होता। किसी भी लिखित संविधान में प्रशासन विषयक समस्त संस्थानों का उल्लेख होना सम्भव नहीं है। प्रायः प्रत्येक राजनैतिक व्यवस्था में वैधानिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, अभिसमयों का विद्यमान होना स्वाभाविक होता है। ये परम्पराएँ या रीति-रिवाज अलिखित ही होते हैं। संविधान तो किसी भी देश की प्रशासन-व्यवस्था का प्रस्थान-विन्दु होता है जिसके शेष पथ की पूर्ति बाद में आने वाली पीढ़ियों द्वारा होती है। यह कैसे सम्भव है कि आज से शताब्दियों पूर्व निर्मित प्रशासनिक प्रारूप बिना किसी परिवर्तन के आज के युग के लिए भी सर्वथा उपयुक्त हो। यही कारण है कि युगों पूर्व निर्मित कंकालरूपी संविधान की साज-सज्जा युगों बाद होती है। उसके नख-शिख की पूर्ति बाद में होती है, उसे मांसल परिधान बाद में मिलता है। इंगलैंड के संविधान के विषय में भी यही बात घटित होती है। डा० आइवर जेनिंग्स के शब्दों को हम यहाँ दुहराते हुए यह कह सकते हैं कि 'यदि संविधान का अर्थ संस्थाएँ हैं और वह कागज नहीं है, तो ब्रिटिश संविधान का निर्माण नहीं किया गया, प्रत्युत उसका विकास हुआ है और वह कोई पत्र भी नहीं है।

वस्तुतः अतीत की आधारशिला पर वर्तमान और वर्तमान पर भविष्य का भव्य भवन निर्मित होता है। ब्रिटेन के राजनैतिक संस्थानों के विकास का यही क्रम रहा है। वहाँ भी पूर्ववर्ती संविधानों को युग, परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार परवर्ती काल में परिवर्तित किया गया, क्योंकि ब्रिटेन निवासी परम्परा के पुजारी रहे हैं, वे युगों-युगों से चली आई व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं थे। अतएव उन्होंने इस दिशा में कोई क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाया। **बाटमी** के शब्दों में 'अँग्रेजों ने अपने संविधान के विभिन्न अंगों को वहीं छोड़ दिया, जहाँ इतिहास की तरंग ने उन्हें लाकर डाल दिया है। उन्होंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इन टुकड़ों को एक स्थान पर एकत्रित कर लिया जाय या उसका वर्गीकरण किया जाय अथवा यदि कोई न्यूनता हो तो उसकी पूर्ति कर ली जाय।

इस प्रकार ब्रिटेन का यह अलिखित संविधान एक क्रमिक ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल है। यह युगानुरूप परिवर्तित हुआ है, लोगों की इच्छाओं के अनुरूप वह बदला है। पुनश्च, यह सत्य है कि फ्रांस, अमेरिका या गणतन्त्र भारत के संविधान की भाँति उसकी कोई समन्वित प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं, परन्तु अनेक महान् चार्टरों या अधिकार-पत्रों, संविधियों, सामान्य विधियों, संवैधानिक अभिसमयों एवं न्यायिक निर्णयों के समग्र रूप ने ग्रेट ब्रिटेन के संविधानों को वह समन्वित स्वरूप देने का

प्रयास किया है जो किसी भी दृष्टि से किसी भी देश के निर्मित संविधान से कम महत्व नहीं रखता। लार्ड ब्राइस ने ब्रिटिश संविधान की व्यवस्था करते हुए कहा था कि ब्रिटिश संविधान स्मृतिगत या लिपिबद्ध उन पूर्वोदाहरणों, अधिवक्ताओं एवं राजनीतिज्ञों की उन कहावतों, प्रथाओं, परम्पराओं, विश्वासों तथा अनेक ऐसी विधियों का समन्वित स्वरूप है जो परम्पराओं से समवेत है और जो वैधानिक निर्णय एवं राजनीतिक अभ्यासों की सह-उत्पत्ति से आवृत्त है।

उपर्युक्त विवेचन से **टॉमस पेन** तथा **डी टोकियावेली** जैसे विचारकों की यह धारणा कि ब्रिटिश संविधान का कोई अस्तित्व नहीं है निरर्थक सिद्ध होती है। प्रो० **ऑग** के मतानुसार 'जिस समय **डी टोकियावेली** ने यह लिखा था उस समय ब्रिटिश संविधान तो विद्यमान था ही, अँग्रेज लोग संविधान के प्रति जागरूक थे और अपने इतिहास पर उन्हें गर्व था।'

'Certainly long before the times of both Paine and De Toqueville England had such a body of rules, with Englishmen equally conscious of its existence and proud of its history.'

—Ogg and Zink.

संविधान संयोग और योजना का शिशु

प्रश्न ३—"ब्रिटिश संविधान संयोग और योजना का शिशु है।" व्याख्या कीजिये। **(पंजाब, १९४७)**

कतिपय विद्वानों ने ब्रिटिश संविधान को संयोग और योजना के शिशु की संज्ञा दी है। इसका प्रधान कारण यह है कि ब्रिटिश संविधान एक विकसित एवं अलिखित संविधान है। निश्चित समय में निश्चित स्थान पर निश्चित व्यक्तियों द्वारा उनकी सर्जना नहीं हुई। यदि हम ग्रेट ब्रिटेन की संवैधानिक प्रगति पर एक दृष्टि डालें, तो हम देखेंगे कि क्रामवेल के प्रशासन के कुछ वर्षों को छोड़कर इंगलैण्ड का संविधान एक सरिता की भाँति शनैः-शनैः प्रगति-पथ पर अग्रसर होता रहा है। इसका एक प्रमुख कारण यह रहा है कि ब्रिटिश जनवर्ग आकस्मिक एवं क्रान्तिकारी

परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। इस प्रसंग में **नेपोलियन** के ये शब्द याद आते हैं कि "फ्रान्स में हम क्रान्ति को जन्म देते हैं, सुधारों को नहीं; परन्तु ब्रिटेन निवासी सुधारों को जन्म देते हैं, क्रान्ति को नहीं।" वास्तव में जैसा कि **ऑग** महोदय का कथन है कि "इंगलैंड में परिवर्तन इतने शनैः-शनैः हुए हैं, परम्परा का जोर इतना स्वाभाविक रहा है और स्वभावतः नामों व पद्धतियों का प्रेम, उस दशा में जब कि चेतना परिवर्तन-पथ पर थी, इतना मूलबद्ध रहा है कि ब्रिटेन का संवैधानिक इतिहास एक अनूठी अविच्छिन्नता की अभिव्यक्ति करता है।"

ब्रिटिश संविधान के परिवर्तन का यह क्रम इतना प्रच्छन्न एवं संयोगिक रहा है कि उसे संयोग और योजना के शिशु की ही संज्ञा दे दी गई। सत्य भी है, ब्रिटेन की राजनैतिक व्यवस्था के कितने ही संस्थान ऐसे हैं, जो संयोग के प्रतिफल हैं। उदाहरण के लिये ब्रिटेन की द्विसदनात्मक संसद-पद्धति को ले लीजिये: यह पद्धति किसी परियोजना का परिणाम नहीं प्रत्युत संयोग का ही प्रतिफल है। सन् १२९५ ई० में आदर्श पार्लियामेंट का अधिवेशन एक सदन के रूप में हुआ था। इस सदन में मुख्यतया तीन वर्गों के प्रतिनिधि थे—पादरी बैरन, नाइट या सामन्त तथा नगर-निवासी। इसी आधार पर यह तीनों वर्ग निर्वाचित होते थे। यदि यहीं क्रम रहता तो ब्रिटिश संसद तीन सदनों में विभक्त होती, परन्तु यह संयोग की बात थी कि संसद दो सदनों में विभक्त हो गई और तब से आज तक यही क्रम चला आ रहा है। संसद के दो सदन ही नहीं कैबिनेट तथा मन्त्रिमण्डल का सामूहिक उत्तरदायित्व, विधेयक के तीन वाचन, मन्त्रिमण्डल में प्रधान मन्त्री की सर्वोपरिता प्रभृति तथ्य संयोग के ही परिणाम हैं।

परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि ब्रिटेन का सम्पूर्ण संविधान ही संयोग का प्रतिफल है। वस्तुतः संयोग के साथ ही विवेक, सुबुद्धि एवं योजना ने भी ब्रिटिश संविधान के स्वरूप-निर्धारण में योग दिया है। १२१५ ई० का महान् आज्ञा पत्र मैग्नाकार्टा, १६२८ और १६८९ का अधिकार-पत्र, १७०१ ई० का एक्ट ऑफ सेटेलमेंट तथा १८३२, १८६७, १८८४, १८८५ और १९११ ई० व १९५८ ई० के सुधार अधिनियम तथा कतिपय अन्य अधिनियम इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

इस प्रकार ब्रिटिश संविधान के निर्माण में संयोग, योजना, विवेक, तर्क और प्रयास सभी का ही प्रभाव रहा है। इसके निर्माण में अनेक हाथ लगे हैं। सर विलियम एन्सन के शब्दों में 'ब्रिटिश संविधान विविध प्रकार की सामग्री द्वारा निर्मित एक ऐसा विशाल प्रासाद है जिसमें स्वामियों ने अपनी-अपनी इच्छानुसार गोमुख, स्तम्भ आदि निर्मित किये हैं।' अन्त में **मनरो** के इन शब्दों के साथ हम इस प्रश्न को समाप्त कर सकते हैं कि 'ब्रिटिश संविधान एक सम्पूर्ण उपादान ही नहीं

प्रत्युत विकास की एक प्रक्रिया है । वह विवेक एवं संयोग का शिशु है जिसका पथ कभी संयोग और कभी योजना द्वारा निर्देशित हुआ है ।'

ब्रिटिश संविधान के स्रोत

प्रश्न ४—ब्रिटिश संविधान के प्रधान स्रोतों का वर्णन कीजिये ।

परिचय-सूत्र—ब्रिटिश संविधान के स्वरूप पर एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश संविधान के विभिन्न तत्वों को समन्वित रूप से एक स्थान पर रखने का, एक प्रलेख में प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया गया परन्तु यदि हम उसके समस्त स्रोतों पर विचार करें, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि ब्रिटिश संविधान एक ऐसी महानदी की भाँति है, जिसमें छोटी-छोटी सरिताएँ आकर एकरस हो गई हैं । वह एक प्रकार से, औपचारिक विधि, पूर्वोदाहरण, एक परम्परा का संश्लिष्ट रूप है । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ब्रिटिश संविधान के स्रोतों को हम निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं :—

१—महान् अभिलेख या ऐतिहासिक अधिकार-पत्र ।
२—महत्वपूर्ण संविधियां ।
३—सामान्य विधि ।
४—संवैधानिक अभिसमय ।
५—न्यायिक निर्णय ।
६—प्रामाणिक प्राप्य ग्रन्थ ।

(१) **महान् अभिलेख या ऐतिहासिक अधिकार-पत्र**—यह ब्रिटिश संविधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है । इसके अन्तर्गत वे महान् अभिलेख, ऐतिहासिक अधिकार-पत्र, अनुबन्ध एवं उद्घोषणाएँ आती हैं, जिनकी उद्भावना किसी महान् राजनैतिक संकट के अन्त करने या किसी राजनैतिक संघर्ष के समाप्त करने के लिए हुई थी । ऐसे अभिलेखों में मैग्ना-कार्टा (Magna Carta 1215), अधिकार-याचना-पत्र (१६२८) तथा अधिकार-पत्र (१६८९) आते हैं । इन महान् अभिलेखों को ब्रिटिश संविधान का चिह्न कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

(२) **महत्वपूर्ण संविधियां**—इन महान् अभिलेखों के अतिरिक्त ब्रिटिश

संविधान राजतन्त्र, अभिजात्यतन्त्र तथा प्रजातन्त्र का समन्वित स्वरूप है। राजतन्त्र के रूप में साम्राज्ञी है, अभिजात्यतन्त्र के रूप में लार्ड सभा है, प्रजातन्त्र के रूप में लोक सभा तथा मन्त्रिमण्डल है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। साम्राज्ञी या सम्राट् का पद तो नाम मात्र का रह गया है। वह मात्र स्वर्णिम शून्य (Golden Zero) या रबर स्टाम्प है। सन् १९११ ई० में अधिनियम के उपरांत लार्ड सभा की शक्तियाँ भी समाप्त हो गई हैं। वह भी छायामात्र रह गया है। अतएव अन्ततोगत्वा हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रिटिश संविधान पूर्णतया पूर्णरूप से एक लोकतन्त्रात्मक संविधान है।

अनेक महत्वपूर्ण संविधियों ने ब्रिटिश संविधान के इस लोकतन्त्रात्मक रूप को बनाने में योग दिया है। इन अधिनियमों में १७०१ ई० का व्यवस्था अधिनियम (Act of Settllement, 1701); १७०७ ई० का एक्ट आफ यूनियन, सुधार अधिनियम १८३२, १८६७ तथा १८८५ ई०; संसद अधिनियम १९११ ई०; १९११ ई० का जन प्रतिनिधित्व अधिनियम तथा १९३७ ई० का क्राउन के मन्त्री अधिनियम (Ministers of the Crown Act, 1937) तथा १९५८ और १९६७ ई० के अधिनियम उल्लेखनीय हैं।

(३) **सामान्य विधि** (Common Laws)—सामान्य विधि से आशय उन विधियों से है जो सारे ब्रिटेन में विधियों के रूप में लागू हैं किन्तु उनका निर्माण संसद के द्वारा नहीं हुआ है। ये विधियाँ ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के अनेक पहलुओं से सम्बन्ध रखती हैं। न्यायाधीश अपने निर्णय में इन विधियों (Common Law) द्वारा निर्देशित होते हैं।

(४) **संवैधानिक अभिसमय**—ब्रिटिश संविधान के एक महत्वपूर्ण अंग वे राजनैतिक प्रथाएँ या संवैधानिक अभिसमय हैं जो संविधान के अभिन्न अंग बन गये हैं। ब्रिटिश संविधान के अलिखित होने के कारण इन अभिसमयों का महत्व बढ़ गया है। इसीलिये इन अभिसमयों को ब्रिटिश संविधान के अलिखित दृष्टान्त कहा गया है।*

(५) **न्यायिक निर्णय** - ब्रिटिश संविधान के एक प्रमुख स्रोत के रूप में न्यायिक निर्णयों का भी उल्लेख किया जा सकता है। ब्रिटिश न्यायाधीशों ने विभिन्न विवादों का निर्णय करते हुए ब्रिटिश विधियों की व्याख्या की है। उनकी इस व्याख्या ने ब्रिटिश संविधान के रूप को निश्चित करने और उसके विकसित होने में योग दिया है।

---

*अभिसमयों के विशेष अध्ययन के लिए अगला अध्याय देखिए।

(६) **प्रामाणिक ग्रन्थ**—ब्रिटिश संविधान पर अनेक उपयोगी ग्रन्थ लिखे गये हैं। इन ग्रन्थों को भी हम ब्रिटिश संविधान का अंग मानते हैं। इन ग्रन्थों में एन्सन (Anson) कृत Law and Custom of the Constitution, में (Many) कृत Parliamentary Practice, बेजहाट (Bagehot) कृत English Constitution तथा डायसी (Dicey) की Law of the Constitution के नाम उल्लेखनीय हैं।

ब्रिटिश संविधान के गुण-दोष

ब्रिटिश संविधान के गुण	ब्रिटिश संविधान की न्यूनताएँ या दोष
१—ब्रिटिश संविधान अलिखित एवं परिवर्तनशील संविधान है। आवश्यकतानुसार उसे परिवर्द्धित, संशोधित या परिवर्तित किया जा सकता है।	१—अलिखित तथा परिवर्तनशील संविधान होने के कारण किसी भी समय उसका आमूल-चूल परिवर्तन किया जा सकता है।
२—ब्रिटिश शासन वैधानिक है, निरंकुश नहीं है।	२—प्रधान कार्यपालिका-शक्ति मन्त्रि-मण्डल के हाथ में है। इसलिये वह किसी सीमा तथा जनहित की उपेक्षा भी कर सकती है।
३—वह ऐतिहासिक विकास एवं सुधारों का प्रतिफल है, क्रांति का नहीं।	३—मन्त्रियों का पद अस्थायी रहता है और वास्तव में शासन-सूत्र सिविल अधिकारियों के हाथ में रहता है, इसीलिये जनता का उतना हित नहीं हो पाता, जितना कि होना चाहिये।
४—यहाँ की संसद संसदों की जननी है। प्रजातन्त्र देशों के लिये यह वरदान तुल्य ही सिद्ध हुई है।	४—शासन बहुमत दल के हाथों में रहता है, अतएव वे अल्पमत के हितों का उतना ध्यान नहीं रखते। दूसरे वे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के प्रयास में राष्ट्र-हित को क्षति पहुँचा सकते हैं।
५—संसद सर्वोपरि है, सशक्त है, सक्षम है।	५—यह कहा जाता है कि ब्रिटेन में विधि-शासन है, विधि की सर्वोपरिता है किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। कानून संसद के हाथ की कठपुतली है, जिसे वह जब चाहे अपनी इच्छानुसार परिवर्तित, परिवर्द्धित कर सकती है।

ब्रिटिश संविधान के गुण	ब्रिटिश संविधान की न्यूनताएँ या दोष
६—कामन लॉ तथा विधि-शासन की छाया में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य सुरक्षित है।	
७—अवरोध तथा सन्तुलन के सिद्धान्त से युक्त होने के कारण ब्रिटिश संविधान के विभिन्न उपादान यथावत् बने रहे हैं। दूसरे शब्दों में यहाँ किसी एक शक्ति को पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं हैं प्रत्युत प्रत्येक शक्ति पर किसी दूसरी शक्ति का नियंत्रण है।	
८—ब्रिटिश संविधान जनता की जागृत चेतना का प्रतीक है। वह इस बात का द्योतक है कि वह अपनी परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने के लिये अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए कितनी सजग एवं सचेष्ट रही है।	

अध्याय | २

अभिसमय

प्रश्न १—अभिसमय से आपका क्या आशय है? विधि तथा अभिसमय के अन्तर को स्पष्ट करते हुए ब्रिटिश-प्रशासन-व्यवस्था में अभिसमय के महत्व को अनुरेखित कीजिये।

अभिसमयों की परिभाषा और अर्थ

अभिसमयों की विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएँ की हैं। **डा० आइवर जेनिंग्स** ने अभिसमयों की परिभाषाएँ करते हुए लिखा है कि "अभिसमय वे परिधान हैं जो ब्रिटिश संविधान के शुष्क कंकाल को मांसल कलेवर प्रदान करते हैं।" **जे० एस० मिल** ने अभिसमयों की व्याख्या करते हुए कहा है कि "अभिसमय संविधान के अलिखित नियम (Unwritten maxims of the constitution) हैं।" **एन्सन** (Anson) ने अभिसमयों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "अभिसमय संवैधानिक परिपाटियाँ (Customs of the constitution) हैं।" **प्रो० डायसी** (Dicey) ने अभिसमयों की व्याख्या करते हुए कहा है कि "अभिसमय वे सिद्धान्त या व्यावहारिक नियम हैं जो यद्यपि राजा, मन्त्रियों तथा दूसरे अधिकारियों के कार्य का नियन्त्रण करते हैं, पर वास्तव में वे कानून नहीं हैं।" **हर्मन फाइनर** के अनुसार "अभिसमय राजनीतिक आचरण के वे नियम हैं जिनकी स्थापना परिनियमों, न्यायिक निर्णयों या संसदीय परम्पराओं के अन्तर्गत नहीं, प्रत्युत उनसे पृथक उनके पूरक के रूप में और उनसे विभिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिये होती है।"[1] ब्रिटिश संविधान में यह उद्देश्य हैं—'कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को जन-इच्छा के प्रति उत्तरदायी बनाना है।'[2]

संवैधानिक अभिसमय क्या है ?—अभिसमय विषयक उपर्युक्त परिभाषाओं के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अलिखित, अनूठे ब्रिटिश संविधान में अलिखित, अनूठे संवैधानिक अभिसमयों का अपना महत्व है। ब्रिटिश संविधान की क्रियान्विति में इन अभिसमयों का अद्वितीय योग रहा है। यदि हम ब्रिटिश संविधान से इन अभिसमयों को अलग कर दें, तो उसका चलना ही कठिन हो जायगा। वस्तुतः

---

1. "Conventions are those maxims or practices which though regulate ordinary conduct of the crown, of Ministers and of other persons under the constitutions are not in strictness laws at all."

2. "Conventions are rules of political behaviour not established in statutes, judicial decisions or Parliamantary custom but seated outside these, supplementing them, in order to achieve object they have not yet embodied. These objects, in the British Constitution, can be summed up thus to make the Executive and the Legislature responsible to the will of the people." **—Herman Finer,**

ये अभिसमय ब्रिटेन के राजनैतिक राजप्रासाद के विविध अवयवों को सुव्यवस्थित एवं सुश्रृङ्खलित रखते हैं। वे उसके अनुकूल वातावरण की सर्जना करते हैं, उस संवैधानिक आवश्यकता की पूर्ति करते है, जिसके माध्यम से संविधान को गति मिलती है, स्वर मिलता है, उसे क्रियात्मक रूप प्राप्त होता है। अभिसमयों की इस महत्ता को ध्यान में रखते हुए प्रोफेसर डायसी ने उन्हें नैतिकता के आदेश नाम से अभिहित किया था। इसी प्रकार से अभिसमय वे प्रच्छन्न विधियाँ हैं जो ब्रिटिश संविधान के उन महत्व रिक्त स्थानों की पूर्ति करते है, जिन पर न तो किसी संविधि की सर्जना हुई है न अधिनियम की। वे ब्रिटिश संविधान के एक अत्यन्त आवश्यक अंग की पूर्ति करते हैं। इस प्रसंग में हमें डाक्टर **आइवर जेनिंग्स** के ये शब्द याद आते हैं कि ब्रिटिश संविधान स्वतः कार्य नहीं करता, प्रत्युत उसे क्रियान्वित किया जाता है। वह राष्ट्रीय सहयोग का एक उपादान है और सहयोग की भावना उतनी ही आवश्यक है जितना कि सहयोग स्वयं। संवैधानिक अभिसमय वे सुविकसित नियम हैं जिनके द्वारा इस सहयोग को मूर्त रूप प्राप्त होता है।

अभिसमयों और विधियों में अन्तर—अभिसमयों के अध्ययन के समय हमें अभिसमय और विधि के अन्तर को भी जान लेना आवश्यक है। जहाँ तक कि विधि का प्रश्न है; ब्रिटेन में मूलतया दो प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं—एक तो सामान्य विधि या 'कामन लॉ' (Common Law) और दूसरे अधिनियम। इनमें से तो 'कामन लॉ' तो न्याय सम्बन्धी नियमों से प्रस्तुत पूर्वोदाहरणों पर अवलम्बित है, और विधियाँ, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, संसद द्वारा निर्मित हैं। इसके विपरीत अभिसमयों का किसी भी विधि-विधान द्वारा निर्माण नहीं हुआ है। इस प्रकार अभिसमय तथा विधियों में पहला अन्तर यह है कि विधियों का या कानून का निर्माण हुआ है, जब कि अभिसमय स्वतः उद्भूत हैं। दूसरे जब कि अभिसमय अलिखित होते हैं, विधियाँ लिखित होती हैं। तीसरे यदि कोई व्यक्ति कानून का उल्लंघन करता है, तो वह दण्ड का भागी होता है, परन्तु अभिसमयों के पालन करने-कराने के लिये न्यायालय बाध्य नहीं। किन्तु विधि और अभिसमय का यह अन्तर विशेष महत्व नहीं रखता। वस्तुतः जैसा कि **डा० जेनिंग्स** का कथन है कि ब्रिटिश संविधान की अभिसमयात्मक व्यवस्था बहुत कुछ सामान्य विधि की व्यवस्था के अनुरूप ही है। पहले तो अभिसमय विधि की आधारशिला पर उद्भूत होते हैं परन्तु जब वे प्रतिष्ठित हो जाते हैं तो स्वतः विधि की आधारशिला बन जाते हैं। इंगलैंड की कितनी ही संविधियाँ इस तथ्य की द्योतक हैं।

अभिसमयों के विविध रूप

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम ब्रिटेन में प्रचलित प्रमुख अभिसमयों को संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं :—

(१) **निर्वाचनीय अभिसमय**—इंगलैंड में प्रजातन्त्रीय सरकार है। अतः उसके प्रतिनिधियों का सार्वदेशिक निर्वाचन किया जाता है। इस निर्वाचन में जो दल बहुमत से विजयी होता है, उसी की सरकार बनाई जाती है। यहाँ पर यह अभिसमय है कि बहुमत प्राप्त दल के नेता को सम्राट् मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये आमन्त्रित करता है। पहले सम्राट् अपनी इच्छानुसार मन्त्री का चुनाव करता है किन्तु अब केवल बहुमत प्राप्त दल हो की सरकार बनाई जाती है। इसके अतिरिक्त प्रधान मन्त्री अपने मन्त्रि-परिषद् का संगठन स्वयं करता है। वह इस कार्य में पूर्ण स्वतन्त्र रहता है। इस विषय में न सम्राट् अपनी सहमति या असहमति प्रकट कर सकता है और न किसी अपने व्यक्ति को मन्त्रि-परिषद् में रखने के लिये प्रधान मन्त्री पर जोर डाल सकता है।

(२) **सदन के विश्वासपरक अभिसमय**—दूसरा महत्वपूर्ण अभिसमय सदन से सम्बन्धित है। जहाँ तक संसद का विश्वास बहुमत प्राप्त दल में बना रहता है तभी तक वह दल स्थित रह सकता है। अन्यथा बहुमत दल की सरकार या तो मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे देती है अथवा प्रधान मन्त्री सम्राट् से कहकर संसद का विघटन करा देता है। इससे परास्त होने वाली सरकार की प्रतिष्ठा बच जाती है। संसद के विघटन के उपरान्त पुनः सार्वदेशिक निर्वाचन कराये जाते हैं। यदि पहले का मन्त्रिमण्डल पुनः विजयी हो जाता है तो उसकी सरकार बनी रहती है। अन्यथा उसे पद-त्याग करना पड़ता है। सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पूर्वपरास्त मन्त्रिमण्डल सम्राट् से कहकर दूसरी बार संसद का विघटन नहीं करा सकता है।

(३) **संसदीय उत्तरदायित्व**—मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी रहते हैं। अपनी योजनाओं तथा प्रशासन-प्रणालियों के संव्यूहन से सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् एक साथ ही कार्य करती है। यदि किसी एक मन्त्री की प्रशासन कार्य में पराजय होती है, तो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को त्याग करना पड़ता है। लार्ड मारले का कथन है कि 'यह एक सामान्य नियम है कि प्रत्येक विभागीय नीति का संचालन सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् द्वारा होता है तथा इसके सभी सदस्य एक साथ ही कार्य करते हैं तथा एक साथ ही मन्त्रिमण्डल से विदा होते हैं।' मन्त्रि-परिषद् अपने विचारों तथा कार्यों की रूपरेखा सम्राट अथवा संसद के समक्ष वैयक्तिक रूप से प्रस्तुत करती है। सामुदायिक प्रयासों की झलक इंगलैंड की मन्त्रि-परिषद् में नहीं दिखाई पड़ती

है। सबके विचार एक के विचार होते हैं। यह नियम वहाँ का प्रमुख अभिसमय ही कहलाता है।

(४) **अध्यक्षीय अभिसमय**—इंगलैंड की कामन सभा के अध्यक्ष के विषय में भी एक महत्वपूर्ण अभिसमय है। सर्वप्रथम अध्यक्ष का निर्वाचन दलगत होता है। किन्तु जब लोकसभा का अध्यक्ष निर्वाचित हो जाता है, तो अपने दल की सदस्यता का परित्याग कर देता है। लोकसभा का अध्यक्ष मध्यस्त अथवा निष्पक्ष व्यक्ति की भाँति आचरण करता है कि अगले निर्वाचन में उसके विरुद्ध कोई भी प्रत्याशी नहीं खड़ा होता है। इसके अतिरिक्त जीवन-पर्यन्त अथवा इच्छित समय तक लोक सभा का अध्यक्ष निर्विरोध बना रहता है।

(५) **सम्राट् के निषेधाधिकारपरक अभिसमय**—लोकसभा तथा लार्ड सभा द्वारा पारित किसी भी विधेयक पर सम्राट अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करता है। यद्यपि उसकी स्वीकृति के बिना किसी भी विधेयक को कानून का रूप मिल सकता है तथा सम्राट किसी भी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने को अस्वीकृत कर सकता है परन्तु ऐसी परम्परा पड़ चुकी है कि सम्राट कभी भी अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं किया करता है।

(६) **सर्वोच्च न्यायालय सम्बन्धी अभिसमय**—इंगलैंड का सर्वोच्च न्यायालय हाउस आफ लार्ड्स है। यह अभिसमय है कि न्यायालय के रूप में हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य बैठते हैं किन्तु केवल लॉ लार्ड्स ही इस कार्य का सम्पादन किया करते हैं न कि सभी लार्ड्स।

(७) **सदन की समिति सम्बन्धी अभिसमय**—लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल अपनी समितियाँ नियुक्त करने का अधिकारी होता है। इन समितियों में वह केवल अपने दल के सदस्यों को रख सकता है। विरोधी दल के सदस्यों को समितियों में न रखने पर भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई जा सकती है।

उपर्युक्त अभिसमयों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक अभिसमय हैं। उन सबका उल्लेख यहाँ पर सम्भव नहीं है। संक्षेप में प्रमुख अभिसमयों को उल्लिखित किया गया है। इन्हीं के आधार पर ब्रिटिश संविधान की अलिखित परम्परा का प्रासाद खड़ा किया गया है।

संवैधानिक अभिसमयों का पालन क्यों होता है?

अभिसमय विषयक उपर्युक्त विवेचन से हमें संविधान के स्वरूप तथा प्रकृति आदि का परिचय मिला। उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अभिसमय तथा विधियों में मौलिक अन्तर है। अतएव प्रश्न यह है कि जब संवैधानिक अभिसमय कानून

नहीं है, न्यायालय उनको कानूनों की भाँति पालन करने-कराने के लिये बाध्य नहीं है, तो वह कौन-सा आधार है जिस पर वे अब टिके हुए हैं। ब्रिटिश संविधान का यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। किन्तु दुःख की बात यह है कि राजनीति के विद्वान्, विधानशास्त्री तथा अन्य विचारक इस मत पर एक नहीं हैं, संविधान के कतिपय अन्य स्थलों की भाँति इस पर भी विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया गया है।

डायसी का मत महाभियोग का भय—अभिसमयों की अनुशास्ति का विवेचन करते हुए **प्रो० डायसी** ने लिखा है कि अभिसमय और विधियाँ अन्तरावलम्बित हैं। यदि हम अभिसमयों का पालन न करें, उनका अतिक्रमण करें, तो उसका अर्थ होगा विधि का अतिक्रमण। इस प्रसंग में उसने लिखा है कि संसद के सत्र को निमंत्रित न करें, तो उससे केवल एक अभिसमय ही भंग नहीं होगा प्रत्युत विधि का भी अतिक्रमण होगा। डायसी के मतानुसार ऐसी दशा में परोक्ष रीति से कई विधियाँ भंग हो जायेंगी। उदाहरणार्थ, संसद का अधिवेशन यदि प्रतिवर्ष नहीं बुलाया जाता है तो प्रतिवर्ष पारित होने वाला न तो सेना अधिनियम ही पास होगा और न अन्य वित्तीय अधिनियम। इसके फलस्वरूप देश के समस्त रक्षा-बल अवैधानिक हो जायेंगे। राजस्व का संग्रह करना भी असम्भव हो जायेगा। वास्तव में यह स्थिति राष्ट्र के लिये अत्यन्त भयंकर स्थिति होगी। परन्तु डायसी महोदय का इस प्रसंग में तर्क यह है कि ऐसा महाभियोग के भय के कारण ही नहीं होता। परन्तु डायसी महोदय का यह तर्क युक्तिसंगत नहीं है, जैसा कि **लॉवेल** महोदय का कथन है कि ब्रिटिश संसद प्रतिवर्ष संसद का सत्र करने के लिये बाध्य नहीं है। संसद राष्ट्र की सर्वोपरि संस्था है। अतएव यदि वह चाहे तो एक से अधिक वर्षों के लिये सेना अधिनियम पारित कर सकती है और कई वर्षों के लिये करों को स्वीकृत कर सकती है। पुनश्च यदि डायसी के तर्क को स्वीकार कर लिया जाय तो अधिनियम, अभिसमय न रहकर कानून का रूप धारण कर लेगा क्योंकि उसके भंग होने पर संसद न्यायालय के रूप में दण्ड देती है। फिर एक लम्बी अवधि तक महाभियोग का प्रयोग न होने के कारण वह नियम लुप्तप्राय है। महाभियोग का प्रयोग न किया जाना स्वयं एक अभिसमय बन गया है अतएव डायसी का यह तर्क कि महाभियोग के भय से ही अभिसमयों का दृढ़तापूर्वक पालन होता है सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। लॉवेल की भाँति प्रो० लास्की ने भी डायसी के उपर्युक्त तर्क का खण्डन किया है।

लोकमत का आधार—अभियोग के विषय में एक अन्य अनुशास्ति लोकमत है। लोकमत की उपेक्षा न हो इसलिये उनका पालन किया जाता है। लॉवेल के शब्दों में अभिसमयों का पालन इसलिये होता है कि वह एक प्रकार की व्यवहार

संहिता के रूप में हैं। एक प्रकार के खेल के नियम हैं और समाज में जिस अकेले वर्ग ने इंगलैंड के सार्वजनिक जीवन के संचालन को अब तक पूर्ण रूप से अपने हाथ में रक्खा है वह स्वयं ऐसे दायित्व के प्रति विशेष रूप में संवेदनशील है।*

कानून भंग होने का भय—पुनश्च क्योंकि एक वर्ग समस्त राष्ट्र की सहमति से जनता के प्रत्याशी (ट्रस्टी) के रूप में शासन करता है, इसलिये वह वर्ग उन प्रथाओं परम्पराओं को भंग न करने के लिये अत्यन्त सावधान रहता है जिन पर वह प्रन्यास अवलम्बित है। इस प्रकार लॉवेल के अनुसार अभिसमयों का पालन इसलिये होता है कि उनके पीछे सदियों से चली आई परम्पराएँ हैं, लोकमत हैं। प्रो० लास्की, ऑग, कार्टर, वेड और फिलिप्स प्रभृति मनीषियों की भी यही धारणा है। प्रो० लास्की के अनुसार कालचक्र ने परिस्थितियों के अभिसमयों को वह शक्ति दे दी हैं जिसके परिणामस्वरूप अभिसमय श्रेय हैं उनके प्रति अटूट श्रद्धा है, उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु कुछ अन्य विद्वान् इस तर्क से सहमत नहीं। उनका विचार है कि लोकमत एक अनिश्चित तथ्य है। उनके अनुसार अभिसमयों का पालन इसलिये किया जाता है कि उनके न पालन करने से कोई विधि भंग होगी। **वांग ते चू** नामक चीनी विद्वान् का विचार है कि अभिसमयों का पालन इसलिये किया जाता है कि उनके द्वारा ब्रिटिश संविधान को लोकतंत्रात्मक बने रहने में सुविधा होती है।

प्रो० सी० एफ० स्ट्रांग ने कानून के तीन रूप अभिसमय, सामान्य विधि और व्यवस्थापिका द्वारा पारित लिखित विधि का विवेचन करते हुए कहा है कि अभिसमयों के पीछे अन्तिम अनुशास्ति शान्ति और उन्नति के लिये समाज की अभिलाषा है।

प्रो० न्यूमैन ने अभिसमयों के पालन के विषय में लिखा है कि उनका पालन इसलिये नहीं होता कि वे राज्य की सर्वोच्च विधि हैं प्रत्युत इसलिये होता है कि उनका सम्बन्ध संवैधानिक सरकार तथा प्रजातन्त्र से है जिनसे सभी ब्रिटेनवासी सहमत हैं।"

---

* "In the main, Conventions are observed because they are a code of honour. They are, as it were the rules of the game and a single class in the Community which had hitherto had the conduct of English Public life almont entirely in its own hands, is the very class that is perfectly sensitive to obligation of this kind."

—**Lowell.**

"Their weight is not derived from any idea that they are the Supreme law of the land, but rather from the fact that they are related to the idea of constitutional government and democracy with which all Britishers find themselves in agreement." **—R. G. Newwan.**

अभिसमय के पालन का आधार और उपयोगिता—अभिसमयों की अनुपस्थिति के विषय में एक अन्य सशक्त तर्क यह है कि अभिसमयों का पालन इसलिये किया जाता है कि वैसा करना हमारे लिये उपयोगी ही है। कारण कि चाहे कैसा भी लिखित संविधान क्यों न हो, वह कितना ही विशद् और व्यापक क्यों न हो शीघ्र गति से बदलते हुए समाज की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होगा। इस आवश्यकता की सम्यक् पूर्ति अभिसमयों द्वारा होती है। वह ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति कर संविधान की सूखी अस्थियों को मांसल कलेवर देता है, उसे स्फूर्ति तथा नई गति देता है।

अभिसमयों का महत्व—अभिसमयों का ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। **सर विलियम होल्ड्सवर्थ** के अनुसार अभिसामयिक नियम (Constitutional Rules) दो उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं: प्रथमतः इन अभिसमयों में उस प्रक्रिया का दर्शन होता है जिसके द्वारा कि संविधान गतिशील है, दूसरे इन अभिसमयों के प्रकाश में संविधान युग के प्रचलित संवैधानिक सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता रहता है।' **प्रो० डायसी** ने अभिसमयों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि अभिसमयों द्वारा दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है: प्रथमतः ये परिवर्तित, सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति के अनुकूल शासन-व्यवस्था को ढालते हैं और दूसरे ये शासक वर्ग को शासन-यंत्र संचालित करने की योग्यता प्रदान करते हैं।' **प्रो० के० सी० ह्वियर** ने अभिसमयों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि अभिसमय इंगलैंड के अल्पसंख्यकों के अधिकारों की तरह करते हैं, विधान-मण्डल के दोनों सदनों के परस्पर सम्बन्ध नियमित करते हैं, विधानपालिका के संगठन को निर्धारित करते हैं, विधानपालिका और कार्यपालिका के सम्बन्ध को निश्चित करते राजनैतिक दलों एवं शासन के अंगों के सम्बन्ध को निर्धारित कर शासन की रूपरेखा को सन्तुलित करते हैं।

इस प्रकार अभिसमयों का इंगलैंड की शासन-व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान हैं। उन पर ब्रिटिश संविधान पूर्णतया आधारित हैं, उनके द्वारा ब्रिटिश संविधान को गति मिलती है तथा ब्रिटेन के संवैधानिक विकास का कार्य सुगम होता है। इन्हीं प्रथाओं की सहायता से ब्रिटेन अपनी व्यवस्था को युग की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढाल सकता है।

सारांश

१—ब्रिटेन के संविधान में अभिसमयों का विशेष महत्व है, वह एक प्रकार की प्रच्छन्न विधियाँ हैं, आचरण के रीति सम्प्रक्त नियम हैं जिनका जन्म आवश्यकता की भाव-भूमि पर होता है और जिनका पालन परम्परागत होता है।

२—संविधान की क्रियाविधि में इन अभिसमयों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है उनके अलग करने से उनका चलना असम्भव हो जायगा। वे उस अनुकूल वातावरण की सर्जना करते हैं जिसके माध्यम से संविधान को गति मिलती है।

३—अभिसमयों और विधियों में प्रधानतया तीन मौलिक अन्तर हैं—

(१) विधियों का निर्माण विधान-सभा द्वारा होता है जबकि अभिसमय स्वतः जन्मते हैं।

(२) अभिसमय अलिखित होते हैं जबकि विधियाँ लिखित होती हैं।

(३) विधियों के पालन करने-कराने के लिए न्यायालय बाध्य है किन्तु अभिसमयों के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

४—अभिसमयों के अनेक रूप हैं जिनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं :

(१) अर्वाचनीय अभिसमय।

(२) सदन में विश्वास सम्बन्धी अभिसमय।

(३) संसदीय उत्तरदायित्व विषयक अभिसमय।

(४) अध्यक्षीय अभिसमय।

(५) सम्राट के विशेषाधिकार विषयक अभिसमय।

(६) हाउस ऑफ लार्ड्स सम्बन्धी अभिसमय।

(७) सदन की समिति सम्बन्धी अभिसमय।

५—संवैधानिक अभिसमयों की अनुशास्ति के मुख्यतः चार आधार हैं :—

(१) महाभियोग का भय।

(२) कानून भंग होने का भय।

(३) लोकमत का ध्यान।

(४) उपयोगिता।

अध्याय | ३

ब्रिटिश सम्राट

प्रश्न १—"इंगलैण्ड के सम्राट को परामर्श देने, प्रोत्साहित करने तथा चेतावनी देने का अधिकार है।" इस कथनांश के प्रकाश में राजतन्त्र की वर्तमान स्थिति पर विचार कीजिये।

विश्व-गगन पर उभरने वाले राजतन्त्रों के अवशेष प्रायः अब धुंधले पड़ चुके हैं उनकी सत्ता का अस्तित्व अब इतिहास के पृष्ठों तक ही सीमित है। परन्तु ग्रेट ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था इसका अपवाद है। सिद्धांततः या बाह्य रूप से राजतंत्र की परम्परा वहाँ अब भी चल रही है। सामान्य रूप से प्रशासन की समस्त शक्तियाँ आज भी क्राउन में निहित हैं, परन्तु व्यवहार में सम्राट् (या साम्राज्ञी जो भी पदासीन हों) मात्र वैधानिक प्रधान है। उसकी इस अशक्तता के कारण ही उसे स्वर्णिम शून्य या 'रबर स्टाम्प' जैसी संज्ञाएँ दी गई हैं। क्राउन का स्थान संसद से मन्त्रिमण्डल ने ले लिया है। यहाँ इस राजा की वास्तविक स्थिति पर विभिन्न पहलुओं से विचार करेंगे।

वर्तमान समय में इंगलैंड के सिंहासन पर महारानी एलिजाबेथ द्वितीय विद्यमान हैं किन्तु सुविधा की दृष्टि से यहाँ किंग (राजा) शब्द का प्रयोग किया गया है।

किंग और क्राउन का अन्तर

राजविज्ञ ग्लेडस्टन ने एक स्थल पर कहा था कि ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासनिक साहित्य में अनेक विशेषताएँ हैं, किन्तु जितनी जीवन्त विशेषता सम्राट् और क्राउन के साहित्य में विभेद की है उतनी अन्य कोई नहीं। ग्लैडस्टन महोदय को इस विषय में सन्देह नहीं। ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट के अधिकार एवं स्थिति के सम्यक् परिज्ञान के लिये सम्राट का क्राउन के इस अन्तर का स्पष्ट रूप से जानना आवश्यक है।

सर्वप्रथम यह कि व्यक्तिगत रूप से राजा एक व्यक्ति है और क्राउन एक

संस्थान । व्यक्तिगत रूप से सम्राट या राजा नश्वर है उसका जन्म होता है, राज्याभिषेक होता है, मृत्यु होती है । एक सम्राट की मृत्यु के बाद उसका दूसरा उत्तराधिकारी सिंहासनासीन होता है । इस तथ्य के प्रकाश में ही ग्लैडस्टन ने कहा था कि हेनरी, एडवर्ड, जार्ज मर सकते हैं परन्तु क्राउन सदा जीवित रहता है, इसलिये एक ओर मृत सम्राट के लिये शोक मनाया जाता है तो दूसरी ओर उसी समय ही नये सम्राट का अभिनन्दन होता है । सम्राट के देहावसान पर प्रायः यही कहा जाता है कि 'राजा की इह-लीला समाप्त हो गई, राजा दीर्घायु हों ।'

"The king is dead, Long live the king."

क्राउन की व्याख्या के प्रसंग में अनेक संविधान मनीषियों ने अनेक प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं । **प्रो० मनरो** ने क्राउन की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'क्राउन एक कृत्रिम तथा वैधिक व्यक्तित्व है । वह न शरीर धारण करता है, न मरता है ।'

"The Crown is an artificial and juristic person, it is not incarnate and it never dies."

सर मौरिस एमास नामक एक अन्य विद्वान् ने क्राउन की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'क्राउन संयुक्त शक्तियों, परमाधिकारों और सामान्य अधिकारों का समन्वित रूप है—एक वैधिक विचार है ।'

"The Crown is a bundle of sovereign powers, prerogative and right—a legal idea." —**Sir Maurice Amos.**

आॅग और **जिंक** नामक लेखकों ने क्राउन की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'राजा मंत्रिगण तथा संसद के सूक्ष्म संगम से निर्मित सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति के पीछे एक कल्पना है जिसे हम क्राउन कहते हैं ।'

"The Crown is only a sort of fiction standing back of the actual supreme executive authority embodied in a subtle association of sovereign minivers and Părliament."

—**Ogg & Zink.**

सिडनी लो ने क्राउन की एक अत्यन्त संक्षिप्त परिभाषा करते हुए कहा है कि "क्राउन एक सुविधाजनक कार्यशील कल्पना—'A Convenient working hypothesis.' है ।"

इस प्रकार क्राउन वस्तुतः एक ऐसी कल्पना है जो इंगलैंड की सम्प्रभु शक्तियों के लिये प्रयुक्त की जा सकती है । वेड और फिलिप्स के शब्दों में वह ब्रिटेन की कार्यपालिका शक्ति का पर्यायवाची है; प्रशासकीय शक्तियों का समन्वित रूप है ।'

इन परिभाषाओं के प्रकाश में यदि हम सम्राट (या साम्राज्ञी जो भी

पदासीन हों) और क्राउन के अन्तर पर विचार करें तो देखेंगे कि राजा और क्राउन का अन्तर वस्तुतः व्यक्ति और संस्था का अन्तर है। व्यक्ति के रूप में राजा का जन्म होता है, इसका राज्याभिषेक होता है, वह पद त्याग सकता है, उसका देहावसान होता है किन्तु संस्था के रूप में क्राउन न कभी जन्मता है, न उसका राज्याभिषेक होता है, न अपदस्थ होता है न मृत्यु। वह एक प्रांजल एवं शाश्वत संस्थान है जिसे वे समस्त परमाधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त हो गई हैं जिनका प्रयोग प्राचीन काल में राजा करता था। इस नाते यदि हम उसे ब्रिटिश लोकमत का जीवन्त चित्र कहें, तो कोई आयुक्त न होगी। क्राउन की स्थिति का सारांश प्रस्तुत करते हुए **डा० हरमन फाइनर** ने लिखा है, "जब हम राजनीति में क्राउन के क्रियाकलापों की चर्चा करते हैं तो उससे हमारा यह आशय होता है कि जनता, संसद तथा मन्त्रिमण्डल ने सदियों के वैधानिक विकास में स्थापित औपचारिक प्रबन्धों द्वारा पारिचालिका शक्ति की सर्जना की है। क्राउन एक अलंकार शीर्षस्थ परिधान है जो राजनैतिक शक्ति के इन सशक्त केन्द्रों को परिवृत्त करता है।"

"When we talk of the actions of the Crown in politics, we mean that the People, Parliament and the Cabinet have supplied the motive power through the formal arrangements established by centuries of constitutional development. The crown is the ornamental cap over all thes effective centres of political energy." —**Dr. Finer.**

उपर्युक्त विवेचन से हम राजा तथा क्राउन के अन्तर को सारांश में इस प्रकार रख सकते हैं :—

राजा	क्राउन
१—राजा एक व्यक्ति है।	१ - क्राउन एक संस्थान है जो राजा मंत्रिमंडल तथा संसद का समन्वित स्वरूप है।
२—राजा नश्वर है उसका जन्म होता है, राज्याभिषेक होता है और मृत्यु होती है।	२—क्राउन एक वैधानिक व्यक्तित्व है, जिसका न तो कभी जन्म होता है, और न कभी मृत्यु।
३—राजा एक मूर्त मुखर किन्तु अशक्त व्यक्तित्व है।	३—क्राउन का अमूर्त मौन, सशक्त व्यक्तित्व है।
४—राजा एक वैधानिक प्रधान है। वास्तविक कार्यपालिका शक्ति उसके हाथ में निहित नहीं है।	४—क्राउन ब्रिटेन की कार्यपालिका का पर्यायवाची है, प्रशासकीय शक्तियों का समन्वित रूप है।

क्राउन की शक्तियाँ : अधिकार

परिचय-सूत्र क्राउन शासन-व्यवस्था की सर्वोच्च प्रशासकीय एवं नीति निर्माण-संस्था को कहते हैं जिसका अर्थ है सम्राट, मन्त्री और संसद । वह सिविल पदाधिकारियों को नियुक्त करता है, सेना और नौसेना को आदेश देता है, सन्धि करता है, संसद को नियन्त्रित करता है, उसे भंग करता है इत्यादि । इस उदाहरण से यह भ्रान्ति हो सकती है कि क्राउन की शक्तियाँ अनन्त हैं, वह अत्यन्त अशक्त है, जो चाहे सो कर सकता है परन्तु सत्य कुछ और ही है । इस प्रसंग में हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि मन्त्री लोग सम्राट के नाम में इन शक्तियों का उपभोग करते हैं । मन्त्री लोग संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं, संसद द्वारा प्रदत्त अधिकार के माध्यम से ही वे इन शक्तियों का उपभोग करते हैं । निम्नलिखित विवेचन से क्राउन की वास्तविक स्थिति का परिचय मिल जायगा ।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से क्राउन की शक्तियों को हम निम्नांकित रूप में रख सकते हैं :

(१) सम्राट के व्यक्तिगत अधिकार,

(२) सार्वजनिक अधिकार,

१—वैयक्तिक अधिकार या विमुक्तियाँ

इंगलैंड का सम्राट भी संवैधानिक दृष्टि से देश का नागरिक है । फलतः देश के अन्य नागरिकों के समान उसके भी कतिपय निजी अधिकार हैं । किन्तु उन अधिकारों में कुछ विशेषाधिकार भी हैं । वे विशेषाधिकार निम्न हैं :—

(क) सम्राट देश का सर्वोच्च नागरिक है । उस पर किसी भी प्रकार का महाभियोग नहीं लगाया जा सकता है तथा अभियोग लगाने पर भी किसी भी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है ।

(ख) सम्राट को किसी भी अपराध के दण्ड स्वरूप बन्दी नहीं बनाया जा सकता है ।

(ग) सम्राट की निजी सम्पत्ति न्यायालय द्वारा अपहृत नहीं की जा सकती है । उसके किसी भी सामान को कुर्क नहीं किया जा सकता है ।

(घ) यदि सम्राट किसी मकान या राजप्रासाद में उपस्थित होता है तो उस भवन में किसी भी प्रकार की न्याय सम्बन्धी कार्यवाही नहीं की जा सकती है ।

(ङ) सम्राट अपनी सम्पत्ति का क्रय-विक्रय अथवा दान करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है । वर्तमान काल में सम्राट की कोई भी निजी जागीर नहीं रह गई है ।

सम्राट के व्यक्तिगत व्यय के लिये संसद प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि स्वीकृत करती है। यह धनराशि सिविल लिस्ट के नाम से प्रसिद्ध है।

१९५३ ई० की संविधि के अनुसार वर्त्तमान साम्राज्ञी एलिजाबेथ द्वितीय की वार्षिक वृत्ति की धनराशि कुल ४,७५,००० पौंड है। उसका विवरण इस प्रकार है :—

निजी वृत्ति	६०,००० पौंड
पारिवारिक वेतन	१,८५,००० पौंड
पारिवारिक व्यय	१,२१,८०० पौंड
दान आदि	१३,२०० पौंड
अन्य आकस्मिक आवश्यकताएँ	९५,००० पौंड
योग	४,५७,००० पौंड

सम्राट के सार्वजनिक अधिकार—सम्राट के सार्वजनिक अधिकारों को पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) **शासन सम्बन्धी अधिकार**—क्राउन के शासन सम्बन्धी अधिकार अनन्त हैं। विगत वर्षों में इनकी वृद्धि हुई है और निरन्तर होती जा रही है। क्राउन ब्रिटेन की कार्यपालिका की सर्वोच्च सत्ता है, इस नाते उसका यह प्रधान कर्त्तव्य है कि उसके प्रदेश में विधियों का यथावत् पालन हो। सम्राट ही राज्य के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करता तथा उन्हें अपदस्थ करता है। न्यायाधीश एवं कुछ अन्य अधिकारी इसके अपवाद हैं। सम्राट ही राष्ट्र के समस्त रक्षा-बलों का अध्यक्ष होता है। सन्धि-विवाह एवं युद्ध की घोषणा करना भी उसी का काम है। वही राजदूतों का स्वागत करता है। दूसरे शब्दो में समस्त वैदेशिक कृत्य क्राउन की ओर से अथवा उसके नाम से सम्पादित होते हैं। उसी के नाम से राजस्व वसूल किया जाता तथा सार्वजनिक व्यय किया जाता है। कम्पनियों और अन्य निकायों को उसी के नाम से चार्टर दिये जाते हैं। उसी के नाम से मुद्रा संचारित की जाती है। वही बिशप, आर्कबिशप और उच्च धार्मिक पदाधिकारी की नियुक्ति करता है। इस प्रसंग में हमें यह न भूलना चाहिए कि क्राउन की ये शक्तियाँ औपचारिक हैं। इन शक्तियों का प्रयोग वस्तुतः मन्त्रिमण्डल द्वारा किया जाता है और इन कार्यों के लिये मन्त्रिमण्डल ही उत्तरदायी होता है।

(२) **विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार**—यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सम्राट कानून बनाने में सर्वथा निष्क्रिय रहता है। परन्तु कानून पर उसकी स्वीकृति परमावश्यक है। कानून का निर्माण संसद करती है। संसद के दोनों सदनों की स्वीकृति

के लिए भेजा जाता है। सम्राट की स्वीकृति पाकर वह विधेयक इंगलैंड का कानून बन जाता है। किन्तु सम्राट के हस्ताक्षर बिना किसी भी प्रकार का विधेयक कानून का रूप धारण कर सकता है। सामान्यतया वह निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है परन्तु परम्परानुसार वह निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं करता है।

सम्राट पार्लियामेण्ट के अधिवेशनों को बुलाता तथा विसर्जित करता है। नव-निर्वाचित दलों में बहुमत प्राप्त दल को अपना मंत्रिमण्डल बनाने की आज्ञा प्रदान करना सम्राट का ही अधिकार है। किसी भी अवसर पर सम्राट लोकसभा का विघटन कर सकता है तथा नये निर्वाचन की आज्ञा प्रसारित करने का अधिकारी है। राजकीय उपनिवेशों के लिए सम्राट ही कानून बनाता है। इसके अतिरिक्त इंगलैंड के लिए भी वह अधिनियम लागू कर सकता है। यहाँ पर उल्लेखनीय यह है कि सभी अधिकारों का प्रयोग सम्राट संसदीय परामर्श पर ही कर सकता है। उसको पृथक् रूप से प्रयोग करने का अधिकार उपलब्ध नहीं है।

(३) **सम्राट के न्याय सम्बन्धी अधिकार**—सम्राट ही न्याय का स्रोत माना जाता है। समस्त न्याय सम्बन्धी कार्यवाही उसी के नाम से की जाती है। वही न्यायाधीश, काउंटियों तथा बरोज के न्यायाधिपतियों की नियुक्ति करता है। प्रिवी परिषद् की न्याय सम्बन्धी समिति के सम्मुख विचारार्थ आये हुए विवादों पर अन्तिम निर्णय भी वह देता है। सम्राट स्वयं विधि से ऊपर है और किसी अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। उसी के हाथ में उपनिवेशों के न्याय सम्बन्धी अधिकार निहित हैं। उसे अपराधियों को क्षमादान का भी अधिकार है।

(४) **धर्म सम्बन्धी अधिकार**—क्राउन इंगलैंड के चर्च का अध्यक्ष होता है। इस नाते वह चर्च के उच्च पदाधिकारियों तथा बिशप, आर्कबिशप आदि की नियुक्ति करता है। चर्च के धार्मिक अधिवेशन भी उसी के नाम से आमन्त्रित किये जाते हैं। इंगलैंड के चर्च की राष्ट्रीय असेम्बली द्वारा पारित परियोजनाओं के लिए भी उसकी स्वीकृति आवश्यक मानी जाती है।

(५) **सम्राट के कुछ अन्य अधिकार**—उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य अधिकार सम्राट को प्राप्त हैं। इन अधिकारों में उपाधि-वितरण का अधिकार प्रमुख है। सम्राट प्रतिवर्ष देश के प्रसिद्ध साहित्यकार, वैज्ञानिक कलाकार आदि को लार्ड तथा कुछ अन्य उपाधियों से विभूषित करता है।

उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग सम्राट या साम्राज्ञी (जो भी पदासीन हों) **स्वेच्छा से** नहीं करते। वस्तुतः यह सम्राट की व्यक्तिगत शक्तियाँ नहीं हैं प्रत्युत **राजपद** की शक्तियाँ हैं। फलतः व्यवहार में इन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रि-परिषद्, **प्रिवी कौंसिल**, उसकी समितियों तथा अन्य प्रशासनिक संस्थाओं के माध्यम से होती हैं।

सम्राट के तीन प्रमुख अधिकार

प्रश्न २—"जिसका तुम प्रस्ताव करते हो, वह अमुक अमुक-कारणों से निकृष्ट है। क्योंकि जिनका तुम प्रस्ताव नहीं करते हो, वे अमुक कारणों से समीचीन हैं। मैं इसका विरोध नहीं करता तथा विरोध करना मेरा कर्त्तव्य नहीं। परन्तु ध्यान रक्खो, मैं तुम्हें सावधान करता हूँ।"

बेजहाट के इस कथन के प्रकाश में सम्राट के तीन प्रमुख अधिकारों का उल्लेख कीजिए।

(१) **परामर्शाधिकार :**—बेजहाट के मतानुसार सम्राट का एक महत्वपूर्ण अधिकार परामर्श देना है। सम्राट के परामर्श का मूल्य सर्वाधिक माना जाता है। प्रत्येक सत्तारूढ़ दल के मंत्री अथवा प्रधान मंत्री सम्राट से प्रशासन के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण परामर्श प्राप्त करते हैं। सम्राट के परामर्श का इतना मूल्य क्यों है ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सम्राट प्रत्येक दलगत राजनीति से पृथक रहा करता है। उसकी पदावधि जीवन पर्यन्त रहती है। अतः सम्राट को शासन की विद्या का पूर्ण परिपक्व एवं सुसंगत ज्ञान हो जाता है। इसलिए उसके परामर्श की अवहेलना नहीं की जा सकती है। यद्यपि प्रधान मंत्री उसकी सहमति को स्वीकार करे या न करे किन्तु वह उस पर विचार अवश्य ही करता है।

उपर्युक्त विवरण से राजा के अधिकारों की परम्परा पर प्रकाश पड़ जाता है। उसके सभी अधिकार बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि सम्राट अनौपचारिक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। किन्तु उसका स्थान तथा महत्व गौण नहीं कहा जा सकता है। सम्राट के अभाव में ब्रिटिश लोकतंत्र की नींव हिल सकती है। उसकी गति-दिशा अर्थशून्य तथा अव्यवस्थित हो सकती है। इसलिए इसके शीर्ष पर सम्राट की औपचारिक स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। अधिकार की दृष्टि से सम्राट सर्व-सत्ता-सम्पन्न है। परन्तु सुप्रसिद्ध विधिशास्त्री बेजहाट का कथन है कि बुद्धिमान सम्राट के केवल तीन ही अधिकार आवश्यक हैं। वे अधिकार निम्नलिखित हैं—(१) चेतावनी, (२) परामर्श, (३) प्रोत्साहन का अधिकार। संक्षेप में इनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

चेतावनी देना—सम्राट अपने देश की उन्नति के लिए सत्तारूढ़ दल को चेतावनी दे सकता है। यदि सम्राट राष्ट्र-हितैषी तथा निष्ठावान होता है और अनुभव करता है कि यह सत्तारूढ़ दल देश को संकटापन्न स्थिति की ओर ले है, तो सम्राट उसे चेतावनी दे सकता है। यदि सम्राट द्वारा दी गई चे

उपेक्षा की जाती है, तो बहुमत प्राप्त दल की स्थिति बहुत ही डाँवाडोल हो सकती है। सम्राट अपनी बहुमूल्य चेतावनी के द्वारा प्रत्येक मन्त्रिमण्डल को सावधान कर सकता है, सत्तारूढ़ दल से यह कह सकता है कि प्रत्येक कार्य का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है, जो तुम सोचते हो उसका परिणाम सुखद होना चाहिए, जिस पर तुम विचार करते हो उसके साथ तुमको दुबारा प्रभावपूर्ण तथा अच्छा सहयोग मिलना चाहिए।

प्रोत्साहन प्रदान करने का अधिकार—सम्राट इंगलैण्ड का सर्वोच्च व्यक्ति माना जाता है। वह अपने देश के मंत्रिमण्डल की अनेक प्रकार से सहायता कर सकता है। यदि मंत्रिमण्डल देश के हित के कार्यों का सम्यक नियोजन करता है, तो सम्राट उसके कार्यों को अपना सहयोग तथा प्रोत्साहन प्रदान कर सकता है। सम्राट का प्रोत्साहन शक्ति-साध्य एवं उत्साह का प्रतीक है। फलतः मन्त्रिमण्डल अत्यधिक उत्साह से कार्यरत हो जाता है क्योंकि सम्राट का वरद हस्त उसकी पीठ पर रहता है।

विधिमनीषी बेजहाट के मतानुसार उपर्युक्त अधिकार ही किसी बुद्धिमान सम्राट के लिए उपयोगी हैं। प्रत्येक सम्राट इन्हीं अधिकारों के सम्यक उपयोग में सम्प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है।

सम्राट-पद उपयोगिता और स्थायित्व के कारण

वह कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी है, न्याय का स्रोत है, देश की सेनाओं का प्रधान है। जीवन के समस्त वैभव उसके चरण चूमते हैं। परन्तु व्यवहार में साम्राजी शक्ति नहीं के बराबर है। जनतंत्र के क्रमिक विकास में अनेक अभिसमयों की उद्भावना के कारण वह पंगु हो गया है। वह अब केवल वैधानिक प्रधान है। ऐसी स्थिति में कतिपय लोग यह कह बैठते हैं कि राजपद एक राजनीतिक असंगति है, ऐसे अनावश्यक पद का क्यों नहीं अन्त कर दिया जाता, ऐसे अनावश्यक पद पर राष्ट्र की इतनी बड़ी धनराशि के नष्ट करने से क्या लाभ? परन्तु इस प्रकार की विचारधारा वाले व्यक्ति नहीं के बराबर हैं। यदि हम ध्यान से देखें, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि राजपद ब्रिटिश-व्यवस्था में उपयोगी और आवश्यक दोनों है। उसके कई आधार हैं।

(१) **सम्राट-पद की लोकप्रियता**—ब्रिटेन की परम्परा-प्रिय जनता सम्राट को अत्यन्त श्रद्धा, आदर एवं प्रेम की दृष्टि से देखती है। हर्बर्ट मारिसन महोदय के शब्दों में, "इंगलैण्ड में सम्राट-पद जितनी श्रद्धा एवं आदर का पात्र है उतना अन्य कहीं भी नहीं, इस श्रद्धा का रहस्य यही है कि सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं।"

जैसा कि प्रो० लास्की का कहना है कि "राजतंत्र ने अपने आपको सांकेतिक रूप से प्रजातंत्र के हाथों में बेच दिया है और इस विक्रय से सभी वर्गों को इतनी प्रसन्नता हुई है कि सार्वजनिक आमोद के गगन-भेदी स्वर में मतभेद की इक्की-दुक्की आवाजें सुनाई नहीं देतीं।"

राज्याभिषेक के समय, संसद के सत्र के उद्घाटन के समय तथा इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर महारानी के दर्शनार्थ एकत्रित भीड़ को देखकर हमें अपने प्रधान मन्त्री नेहरू के वे उद्गार याद आते हैं जो उन्होंने महारानी एलिजाबेथ द्वितीय को उनके पिता की मृत्यु के अवसर पर भेजे थे। उन्होंने लिखा था कि ब्रिटिश राजतन्त्र की उपादेयता का प्रधान आधार उसकी लोकप्रियता है।

"It is remarkable that in our world of republics the British monarchy showld survive not only in law but also in affection of the people."

(२) राष्ट्रीय एकता का प्रतीक—ब्रिटिश राजतंत्र का प्रभाव-क्षेत्र ब्रिटिश जाति एवं ब्रिटेन ही नहीं है। राष्ट्रमण्डल के अन्य देश और अन्य लोग भी हैं। राजतन्त्र साम्राज्य के इन विविध घटकों में एकता का संचार करता है। साम्राज्ञी उस एकता का प्रतीक है।

(३) जन-जीवन का आदर्श—इंगलैण्ड का सम्राट जन-जीवन का आदर्श है; खान-पान, व्यवहार, वेशभूशा में सम्राट का ही अनुगमन किया जाता है। सम्राट भी लोक की सहानुभूति लेकर चलता है। जनता के कल्याणार्थ सम्राट विविध प्रकार के प्रभावपरक कृत्य करता है। गरीबों तथा निराश्रितों के प्रति सम्राट अपनी उदारता में नहीं चूकता। इसीलिये अँग्रेजों को अपने सम्राट से गहरी सहानुभूति है। यही कारण है कि अनेक अवसर मिलने पर भी सम्राट पद को नहीं समाप्त किया गया।

(४) पर-राष्ट्र का सम्बन्ध-सूत्र—सम्राट की स्थिति देश में सर्वोच्च होती है। उसी के नाम से सम्पूर्ण कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। परराष्ट्र सम्बन्ध भी सम्राट के ही माध्यम से होते हैं। अनेक ऐसे अवसर आये हैं जिनमें वैदेशिक कटुता समाप्त हुई है। पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध दृढ़ हुए हैं। उसको साम्राज्य का स्वर्णिम आधार-सूत्र माना जाता है। उदाहरणार्थ एडवर्ड सप्तम के व्यक्तिगत सम्पर्क के फलस्वरूप फ्रान्स तथा इंगलैण्ड मित्र बन गये। इसी प्रकार सम्राट के प्रयासों के कारण अमेरिका तथा इंगलैण्ड के मध्य मैत्री सम्बन्ध सुदृढ़ हो गये। कनाडा से भी सम्पर्क बढ़ने का एकमात्र कारण सम्राट ही था। इसीलिये वैदेशिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिये सम्राट व्यक्तिगत रूप से अन्य देशों पर पर्याप्त प्रभाव डालता है।

सम्राट के स्थान पर अन्य किसी व्यक्ति को उसका श्रेय मिलना कठिन ही होगा।

कामनवेल्थ के सभी सदस्यों ने ब्रिटिश सम्राट को औपचारिक मान्यता प्रदान की है। उसको राष्ट्र-मंडल (कामनवेल्थ) का प्रमुख स्वीकार कर लिया गया है। भारत भी कामनवेल्थ का सदस्य है। अतः यह भी प्रतीक रूप से इंगलैण्ड के सम्राट का सम्मान करता है। क्राउन रहस्यपूर्ण वस्तुतः आकर्षणात्मक आधार है जिससे वह दृढ़तापूर्वक सुगठित कामनवेल्थ के राष्ट्र, राज्य तथा वर्गों के शिथिल बन्धनों को संगठित करता है। जैसा कि एक अवसर पर सर विंस्टन चर्चिल ने कहा था—

"He is the mysterious link, indeed I may say the magic link, which unites our loosely bound but strongly interwoven Commonwealth of nations, states and races.

(५) **सर्वोच्च परामर्शदाता**—सम्राट की पदावधि जीवन पर्यन्त रहती है अतः उसको राजनीति के विषय में पूर्ण एवं परिपक्व ज्ञान हो जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक विधि-निर्माण के पूर्व प्रधान मंत्री उससे परामर्श ग्रहण करता है। प्रधान मन्त्री विधि के अनन्तर तथा अन्य सभी राज्य सूचनाएँ सम्राट के पास भेजता है। इस प्रकार सम्राट एक तटस्थ पर्यवेक्षक की भाँति राज्य की गति-विधियों का पर्यवेक्षण किया करता है। उसकी पदावधि तक अनेक मन्त्रिमण्डल बनते तथा बिगड़ते हैं। किन्तु सम्राट में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए राज्य-कार्यों के सम्पादन में सम्राट के बहुमूल्य परामर्शों की उपेक्षा नहीं की जाती। सम्राट के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति का परामर्श महत्वपूर्ण नहीं हो सकता।

(६) **निष्पक्ष राजनीतिज्ञ**—इंगलैंड की सरकार प्रजातंत्रात्मक है। प्रजातन्त्रात्मक सरकार बहुमत प्राप्त दल की बनाई जाती है। फलतः प्रशासकीय कार्यों में दलीय नीति एवं आदर्श उभर आते हैं। यदि सम्राट के स्थान पर कार्यपालिका प्रधान दलीय नीति की अनुगामी हो तो वह शासन-सूत्र का संचालन दलीय नीति से विपरीत नहीं कर सकता। अतः व्यवस्था में व्याघात उत्पन्न हो सकता है। सम्राट दलीय राजनीति से सर्वथा दूर है। वह निष्पक्ष भाव से देश के प्रशासन की अनुशीलन करता रहता है। कहीं पर भी अनिष्ट सम्भावना को लक्ष्य करके वह सत्तारूढ़ दल को सावधान करता है। इस प्रकार देश भावी संकटों से बच जाता है। यह कार्य अन्य के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता।

(७) **सम्राट मध्यस्थ के रूप में**—सम्राट या साम्राज्ञी की एक अन्य उपयोगिता है। वह यह कि सम्राट एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है। निष्पक्ष होने के कारण उसके परामर्श का सब लोगों द्वारा आदर किया जाता है। मध्यस्थता में उसके प्रतिष्ठित पद का भी योग रहता है। इङ्गलैण्ड का इतिहास ऐसे अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है जब कि सम्राट की मध्यस्थता का समुचित प्रभाव पड़ा। प्रो० लास्की के

शब्दों में 'एक कर्मठ तथा उचित परामर्श-दाता सम्राट अभी भी प्रशासन-नीति के निर्धारण में व्यापक प्रभाव डालता है।'

(८) **सम्राट-पद ब्रिटिश जनता की रूढ़िवादी प्रवृत्ति के अनुरूप है**—आंग्ल राजतन्त्र एक अत्यन्त पुरातन संस्थान है। वह उतना ही पुराना है जितना कि इंगलैण्ड का इतिहास। अतएव ऐसी दशा में इंगलैण्ड की जनता स्वाभाविक रूप से अपनी रूढ़िवादी प्रवृत्ति के अनुरूप सम्राट-पद को बनाए रखना चाहती है। राजतन्त्र की पुरातनता के विषय में डा० बार्कर ने लिखा है कि 'The Monarchy is older than our Parliament, which goes back 700 years to the thirteenth Century, it is older than our law courts who go back 800 years to twelfth century , it is older than our oldest University.'

(९) **सामाजिक जीवन का नेता**—ब्रिटिश सम्राट इंगलैण्ड के सामाजिक जीवन का भी एक महत्वपूर्ण अंग है। वह आंग्ल समाज की नैतिकता, फैशन, कला, साहित्य इत्यादि के क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान करता है। यहाँ तक कि दैनिक जीवन में भी हम उसके नेतृत्व का व्यापक प्रभाव देखते हैं। इसका एक रोचक दृष्टान्त दिया जा सकता है। एक बार १९३९ ई० में राजकुमारी एलिजाबेथ और राजकुमारी मार्गरेट का अनुकरण कर इंगलैण्ड के बच्चे भी बिना हैट के बाजार में निकलने लगे। उसका परिणाम यह हुआ कि हैटों की बिक्री कम हो गयी। फलतः हैटों की बिक्री से प्रभावित हैट विक्रेताओं का एक प्रतिनिधि मण्डल महारानी से मिला। महारानी के आदेश पर जब राजकुमारियों ने हैट पहनना पुनः प्रारम्भ किया तो जनता ने भी उसका अनुकरण किया और हैटों की बिक्री होने लगी।

(१०) **शासन को गरिमा प्रदान करता है**—इंगलैंड की राज्य-व्यवस्था में राजपद गरिमा प्रदान करता है जैसा कि सिडनी लो का कहना है, "किसी भी संगठन के साथ राजकीय शब्द के जुट जाने से सफलता अवश्यम्भावी हो जाती है। इंगलैंड की जनता राजपद को अत्यन्त श्रद्धा से देखती है जिसका परिणाम यह होता है कि जनता शासन की निन्दा कर सकती है पर वह अपने राजपद की निन्दा करना उचित नहीं समझती।"

'We can damn the Government and cheer the King'

जैसा कि एडवर्ड जेक्स ने कहा है—'The king supplies the personal and picturesque element which catches the popular imagination far more readily than constitutional arrangements, which cannot be heard or seen.'

(११) **संसदीय शासन की आवश्यकता की पूर्ति**—संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका के दो पक्ष होते हैं—औपचारिक (Formal) कार्यपालिका और वास्तविक (Real) कार्यपालिका। औपचारिक कार्यपालिका वैधानिक प्रधान की आवश्यकता की पूर्ति करती है। इंगलैंड में राजपद इसी वैधानिक प्रधान की आवश्यकता की पूर्ति करता है। यदि राजपद न हो तो उसके स्थान पर इस प्रकार के अन्य अधिकारी यथा राष्ट्रपति इत्यादि की आवश्यकता होगी।

इस प्रकार ब्रिटेन में राजपद का औचित्य सिद्ध हो जाता है। यदि राजपद को समाप्त कर किसी निर्वाचित राष्ट्रपति या राज्याध्यक्ष का प्रावधान किया जाय तो उससे अनेक कठिनाइयाँ खड़ी होंगी।

प्रश्न—ब्रिटिश साम्राज्ञी की स्थिति पर विचार करते हुए बतलाइये कि उनकी ब्रिटेन की शासन-व्यवस्था में क्या स्थिति है और साम्राज्ञी के पद के बने रहने के क्या कारण हैं ?

ब्रिटेन में सम्राट या साम्राज्ञी के पद को लेकर समय-समय पर अनेक प्रश्न खड़े होते रहे हैं। ब्रिटेन की राजनैतिक व्यवस्था में राजतन्त्र की उपयोगिता को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता रहा है। इसका प्रधान कारण यह है कि वर्तमान युग लोकतन्त्र का युग है और राजतन्त्र का युग लद चुका है। ऐसी दशा में यदि ब्रिटेन के राजतन्त्र को राजनीतिक असंगति (Political Anachronism) कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। ब्रिटेन के इतिहास में कुछ ऐसे अवसर आये हैं जब कि राजतंत्र को समाप्त कर इंगलैण्ड में पूर्णतया गणतन्त्र की स्थापना करने की आवाज उठाई गई थी। महारानी विक्टोरिया के शासन-काल के चालिस वर्षों में राजतन्त्र की काफी आलोचना की गई थी। उस समय राजतन्त्र इतना कुख्यात हो गया था कि गलियों में प्रिंस आफ वेल्स को देखकर लोग सी-सी करते थे। लेकिन १८७८ ई० के उपरान्त गणतन्त्रवाद का स्वर मन्द पड़ गया और अब तो इंगलैण्ड का राजतन्त्र पूर्णतया सुरक्षित दिखलाई पड़ता है। जैसा कि 'फार्च्यून' नामक पत्रिका में एक बार कहा गया था कि "जेम्स प्रथम के राज्य-काल के बाद ब्रिटिश राजतन्त्र कभी भी इतना सुरक्षित नहीं था जितना कि आज है और न तो इतिहास में आज के जैसा उसे कभी सम्मान ही प्राप्त हुआ।"* इसका प्रधान कारण यह है कि वर्तमान समय में साम्राज्ञी सैद्धान्तिक दृष्टि से तो पर्याप्त अधिकार रखती हैं किन्तु व्यवहार में उनकी समस्त शक्तियाँ लोकतांत्रिक संस्थाओं में निहित हैं।

*"Not since the reign of James I have the British throne been more safe than it is today, and never in its history has the British Crown more esteemed." **Extract from the 'Fortune'**

१—**दलीय पक्षपात**—सम्राट के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को राष्ट्रपति बनाने से दलीय पक्षपात अवश्य बढ़ेगा क्योंकि प्रजातंत्र का आधार ही दलगत राज-नीति है। प्रधान भी दल का ही होगा। अतः दलीय पक्षपात स्पष्ट है। वह अपने अतीत को विस्मृत नहीं कर सकेगा। इससे देश की अखण्डता तथा आन्तरिक प्रशासन प्रणाली में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है।

(२) **निर्वाचन की समस्या**—सम्राट का पद वंशक्रमानुगत है अथवा उसमें किसी भी प्रकार के विरोध की सम्भावना नहीं है किन्तु राष्ट्रपति के निर्वाचन की जटिल समस्या उठेगी ; जैसा कि अमेरिकी राष्ट्रपति का हाता है। यद्यपि अमेरिकी संविधान ने राष्ट्रपति को दलीय निर्वाचन से पृथक् रक्खा है, परन्तु वहाँ दलगत राजनीति ने इस विधि को समाप्त-प्राय सा कर दिया है।

(३) **राष्ट्रीय एकता का अभाव**—सम्राट राष्ट्र का सर्वाधिक सम्मानित व्यक्ति है। प्रजा उसके प्रति निष्ठावान है। किन्तु राष्ट्रपति के प्रति प्रजा में स्थायी निष्ठा नहीं उत्पन्न हो सकती क्योंकि राष्ट्रपति किसी एक दल विशेष का होगा। उसका पद अस्थायी रहेगा। इसके साथ ही राष्ट्रपति को जनता के साथ वह सहानुभूति नहीं हो सकती जो सम्राट् को होती है क्योंकि सम्राट् देश की जनता को अपनी प्रजा समझता है किन्तु राष्ट्रपति को इस प्रकार की अनुभूति होने का कोई प्रश्न नहीं उठता। इसका कारण यह है कि राष्ट्रपति भी जनता में से एक होगा जब कि सम्राट वंश-परम्परा से अपने को जनता का हितैषी, रक्षक तथा पालक समझता है।

(४) **कामनवेल्थ के राष्ट्रों की अनास्था**—कामनवेल्थ के सदस्य राष्ट्रों ने सम्राट् को कामनवेल्थ का प्रधान स्वीकार किया है किन्तु राष्ट्रपति के साथ अन्य राष्ट्रों को ऐसी आस्था नहीं हो सकती।

(५) **राजनीतिक अकुशलता**—सम्राट् का पद चिरस्थायी है। फलतः वह राजनीति में कुशल हो जाता है। किन्तु राष्ट्रपति का पद अस्थायी रहेगा। उसकी एक निश्चित लघु अवधि होगी। अतः इस लघु अवधि में वह विशेष प्रशासनिक क्षमता का अर्जन कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट् राष्ट्रपति की अपेक्षा राजपद अधिक उपादेय है। यही कारण है कि विश्व का महान् प्रजातंत्रवादी देश होने पर भी वहाँ विधिवत् राजतंत्र की प्रतिष्ठा है। वाह्य कार्यों को देखकर किसी को भी प्रजातंत्र का अनुभव नहीं हो सकता। इसके मूल में अंग्रेजों की रूढ़िप्रियता ही है।

आवृत्ति के लिए प्रश्न

प्रश्न १—"ब्रिटिश सम्राट् राज्य करता है, शासन नहीं।" व्याख्या कीजिये।

इस प्रश्न के उत्तर में ब्रिटिश सम्राट की वास्तविक स्थिति का विवेचन करते हुए यह दिखलाना है कि ब्रिटिश सम्राट वैधानिक प्रधान मात्र है। जो कार्य सम्राट या राजा द्वारा सम्पादित होते थे, वे अब मन्त्रियों द्वारा किये जाते हैं। राजा तो केवल एक सजावट का उपादान है। विगत सदियों के जनतांत्रिक आन्दोलन से उत्पन्न अभिसमयों ने राजा को पंगु कर दिया है। वह संविधान के अनुसार इन अभिसमयों के अनुकूल आचरण करने के लिए बाध्य है। मुनरो के शब्दों में यदि संसद सम्राट की मृत्यु का परिपत्र भी सम्राट के पास भेज दें, तो भी सम्राट उस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार नहीं करेगा। इन तथ्यों के साथ सम्राट की वास्तविक स्थिति से सम्बन्धित अन्य तथ्यों का भी उल्लेख करना चाहिए।

प्रश्न २—"ब्रिटिश राजा कोई गलती नहीं कर सकता।" समझाइये

इस प्रश्न में भी एक प्रकार से राजा की वास्तविक स्थिति का विवेचन करना है। इस सन्दर्भ में विशेषकर अधोलिखित तथ्यों पर प्रकाश डालना है। पृथकतः यह कि राजा विधि से ऊपर है। ब्रिटेन में कोई ऐसी विधि नहीं है जिसके अनुसार राजा को उसकी किसी गलती के लिए दण्डित किया जा सके। दूसरे यह कि राजा राज्य करता है, शासन नहीं। उसके नाम पर किये गये कार्यों के लिए जिम्मेदार उस कार्य को करने वाले अधिकारी हैं न कि राजा। तीसरे यह कि कोई पदाधिकारी सम्राट की आड़ में उसके नाम पर किये गये कृत्यों के कारण अपने को निर्दोष सिद्ध नहीं कर सकता। इस सन्दर्भ में विख्यात डैनबी केस का उदाहरण दिया जा सकता है। डैनबी पर महाभियोग लगाया गया था कि उसने फ्रान्स स्थित ब्रिटिश राजदूत को एक अनुचित पत्र लिखा है। डैनबी ने उसके प्रत्युत्तर में यह तर्क प्रस्तुत किया कि वह पत्र राजा की आज्ञा से लिखा था परन्तु संसद ने उसे नहीं माना। इस घटना से यह स्पष्ट हो गया कि कोई मन्त्री अपनी भूल के लिए स्वयं उत्तरदायी है। राजा भूल से परे है।

इसके साथ ही निम्नलिखित पंक्तियों को भी उद्धृत किया जा सकता है। ये पंक्तियाँ चार्ल्स द्वितीय के शयन-कक्ष पर उसके सामन्त ने लिख दी थीं :—

"Here lies our sovereign lord the King, whose words no one relies on; who never says a foolish thing nor ever does a wise one."

अध्याय | ४

मंत्रि-परिषद्

प्रश्न ८—ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।

प्रजातन्त्र में मन्त्रि-परिषद् का अपना स्थान होता है। मन्त्रिमण्डल की ही सत्ता से प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन, संगठन एवं नियोजन किया जाता है। किन्तु मंत्रिमण्डल से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान मंत्रि-परिषद् का होता है। इंगलैंड भी इस तथ्य का अपवाद नहीं कहा जा सकता है। वहाँ पर भी पूर्ण संवैधानिक तथा सुसंयत प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की गई है। इंगलैंड में वास्तविक तथा व्यावहारिक कार्य-पालिका मंत्रि-परिषद् ही है। कुछ समय पूर्व मंत्रि-परिषद् सम्राट की एक परामर्शदात्री समिति मात्र थी और समस्त प्रशासनिक शक्तियाँ सम्राट के ही हाथों में निहित थीं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन मंत्रि-परिषद् प्राणहीन अथवा प्रभावहीन थी। किन्तु समय की गति बदली, राजतंत्र शिथिल पड़ गया। प्रजातंत्रात्मक सत्ता की शक्ति उभर आई। इससे मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व अधिक सुदृढ़ तथा प्राण-वान हो गया। सम्राट की सभी शक्तियाँ शनैः-शनैः मंत्रि-परिषद् को प्राप्त हो गईं। अब सम्राट केवल औपचारिक कार्यपालिका मात्र है। उसकी शक्ति का पूर्ण उपयोग मंत्रि-परिषद् करने लगी है।

मंत्रि-परिषद का अर्थ—अनेक विद्वानों ने ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी अनेक व्याख्याएं की हैं।

बेजहाट ने मंत्रि-परिषद् की व्याख्या करते हुए कहा है कि "ब्रिटिश मंत्रिमण्डल एक हाईफन है जो जोड़ता है, एक बकसुआ है जो कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका को जकड़ देता है।"

"A hyphen that joins, a buckle which fastens the legislative part of the state with the executive part." —Bagehot.

प्रो० मुनरो के अनुसार, "मंत्रिमण्डल राजशाही परामर्शदाताओं का वह वर्ग है जिसे प्रधान मंत्री ने क्राउन के नाम पर चुना है और जिसे कामन्स सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है।"

"Cabinet may be defined as the body of royal advisers chosen by the Prime Minister in the name of the crown with the approval of a majority in the House of Commons."

—Munro.

सिडनी लो ने मंत्रि-परिषद् की व्याख्या करते हुए कहा है कि "मंत्रि-परिषद एक उत्तरदायी कार्यपालिका है जिसे राष्ट्रीय शासन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त है परन्तु जो इस विशद शक्ति का उस प्रतिनिधि सदन के परिवीक्षण में उपयोग करती है जिसके प्रति वह उत्तरदायी है।"

Cabinet is the responsible executive having complete control of the administration of the general direction of national business but exercising this vast power under the strict supervision of the representative chamber to which it is accountable for all its actions and omissions."

लावेल के शब्दों में "मंत्रिमण्डल राजनैतिक मेहराब का प्रमुख पत्थर है।"

"Cabinet is the key stone of the politcal arch." —Lowell.

जान मेरियट के शब्दों में "मंत्रिमन्डल वह धुरी है जिस पर प्रशासन घूमता रहता है।"

"The Cabinet is the pivot round which the whole political machinery revolves."

— J. Marriot.

राम्जे म्योर के शब्दों में "मत्रिमन्डल राज्य रूपी पोत का परिचालक चक्र है।"

"The cabinet is the steering wheel of the ship of the state."

—Ramsay Muir.

ग्लेडस्टन के अनुसार "मत्रिमण्डल वह सूर्य-पिंड है जिसके चारों ओर अन्य पिंड घूमते हैं।"

"The solar orbit round which other bodies revolve."

—Gladstone.

प्रो० लास्की के अनुसार "अपने कार्यों के आधार पर मन्त्रिमण्डल प्रधानतः किसी राजनीतिक दल या संयुक्त राजनीतिक दलों की एक समिति है जिसे कामन्स सभा में बहुमत प्राप्त है।"

मंत्रि-परिषद् की विशेषताएँ

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मंत्रि-परिषद् की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं :

(१) **दलीय आधार**—पहले उल्लेख किया जा चुका है कि प्रजातंत्रात्मक सरकार दलीय बहुमत पर बनी होती है । मिश्रित सरकार अधिक स्थायी नहीं होती है । अधिकांशतः बहुमत प्राप्त एक ही दल की सरकार बनाई जाती है । प्रधान मन्त्री अपने मन्त्रिमण्डल से ही अनेक महत्वपूर्ण विशिष्ट सहयोगियों को मंत्रि-परिषद् में रखता है । विरोधी दल के व्यक्ति मन्त्रि-परिषद् में नहीं रखे जा सकते, क्योंकि इससे अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । अतः दलीय एकता मंत्रि-परिषद् की सबसे बड़ी विशेषता है ।

(२) **उद्देश्य की समानता**—कैबिनेट में एक ही दल के सदस्य होते हैं । फलतः उन सभी का एक उद्देश्य होता है । वह उद्देश्य है अपने दल की नीति के अनुकूल कार्यों का संचालन । अतः एक ही दल की नीति को क्रियान्वित करने के लिए यह मन्त्रि-परिषद् पूर्ण सफल होती है । इसमें गतिरोध नहीं उत्पन्न होता क्योंकि दलीय अनुशासन की पूर्ण प्रतिष्ठा रहती है । इंगलैंड में कैबिनेट को सत्तारूढ़ दल की एक समिति भी कहा जाता है । वस्तुतः इंगलैण्ड के किसी भी दल की मन्त्रि-परिषद् बने, दल के मूलभूत उद्देश्यों को मूर्त रूप देने का अथक प्रयास करती है । अन्यथा भावी निर्वाचन में उसकी स्थिति डाँवाडोल हो सकती है । इसलिए सतर्कतापूर्वक इंगलैंड की कैबिनेट अपनी दलीय नीति तथा उद्देश्य का पालन किया करती है ।

(३) **सामूहिक उत्तरदायित्व**—इंगलैंड के प्रशासन सरकार की नीतियों के परिणाम का उत्तरदायित्व मन्त्रि-परिषद् पर होता है । कैबिनेट के सभी मन्त्रिगण, लोक सभा के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी रहते हैं । अपने-अपने विभागों तथा सत्तारूढ़ दल की सभी नीतियों के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व का होना ही मन्त्रि-परिषद् की मौलिक विशेषता है । यदि किसी भी मन्त्री की गलत नीति के परिणामस्वरूप लोक सभा उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करती है अथवा उसका पराभव होता है, तो सम्पूर्ण सरकार पद-त्याग कर देती है । अथवा, लोक सभा का ही विघटन करा देती है । यही कारण है, किसी नीति अथवा योजना के पूर्व सभी मंत्रिगण उस प्रयोजनीय विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं । इसके उपरान्त किसी भी अघटित घटना के लिये सब लोग सामूहिक उत्तरदायित्व वहन करते हैं । इसी विशेषता को लक्ष्य करके लार्ड मारले ने कहा है कि सामान्यतः प्रत्येक विभाग की महत्वपूर्ण नीति का आयोजन सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् के सभी सदस्य एक साथ करते हैं तथा विदा

होते है अर्थात् पद-त्याग करते हैं । परराष्ट्र विभाग की गलतियों के कारण चान्सलर आफ एक्स्चेकर अपने कार्यालय से बहिष्कृत किया जा सकता है अथवा एक मूर्ख सुरक्षा मन्त्री के परिणामस्वरूप प्रतिभावान गृह-सचिव दुःख में पड़ सकता है । कैबिनेट के विचार सम्राट तथा लोक सभा के समक्ष इस प्रकार रक्खे जाते हैं मानो वह एक ही व्यक्ति के विचार हों । यह सामूहिक रूप से एक ही परामर्श देती है । चाहे सम्राट से सम्बन्धित हो अथवा प्रतिनिधि सदन से । इसकी महत्ती विशेषता सुदृढ़ संगठन तथा सामूहिक एवं अविभाज्य उत्तरदायित्व है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वह कार्य पूर्ण रीति से करती है । यद्यपि किसी एक मन्त्री से पराभूत होने से, सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के त्याग-पत्र देने का विधान में उल्लेख नहीं है । किन्तु ऐसी परम्परा पड़ चुकी है कि एक के भी असफल होने पर सम्पूर्ण मंत्रिमंडल त्याग-पत्र दे देता है अथवा प्रधान मन्त्री सम्राट से कहकर लोक सभा का विघटन करवा देता है । इससे सामूहिक उत्तरदायित्व की परम्परा सदैव बनी रहती है ।

(४) **गोपनीयता**—ब्रिटिश कैबिनेट की सबसे बड़ी विशेषता गोपनीयता है । इसके सभी कार्यकलापों को पूर्णतया गुप्त रखा जाता है । बैठक की कार्यवाही का कोई सूत्र किसी प्रकार से प्रकाश में नहीं लाया जा सकता । जो भी निश्चय लिया जाता है उसका गोपन पूर्ण रूप से होता है । कोई भी परिषद् अथवा मन्त्री कहीं भी उस निश्चय को प्रकट नहीं कर सकता । समाचार-पत्र, सभा-मंच अथवा व्यक्तिगत वार्ता-गोष्ठियों में भी मन्त्रि-परिषद् की बातों को प्रकट नहीं किया जाता । अन्यथा रहस्योद्घाटन करने वालों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जा सकती है । इसके साथ ही अर्थ-दण्ड भी लगा दिया जाता है । १९३४ में भूतपूर्व श्रममन्त्री श्री एडगर लैंसबरी ने मन्त्रि-परिषद् में प्रस्तुत किये गये एक स्मरण-पत्र को आत्मकथा में प्रकाशित कर दिया था । फलतः उनके ऊपर अर्थ-दण्ड लगाया गया था । इसी प्रकार १९२२ में भारत सचिव को पद-त्याग करना पड़ा था क्योंकि उन्होंने भारत विषयक कुछ गोपनीय तथ्य प्रकट कर दिये थे । इस प्रकार गोपनीयर्ता इस परिषद् की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है ।

(५) **प्रधान मन्त्री का नेतृत्व**—इंगलैंड के संविधान में कैबिनेट का अन्यतम स्थान है । किन्तु वही कैबिनेट प्रधान मंत्री के कुशल नेतृत्व में संचालित होती हैं । प्रधान मंत्री ही सच्चे अर्थों में इसका नेता होता है । यद्यपि अन्य मंत्रियों का स्थान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं होता है किन्तु प्रधान मन्त्री उन सब में प्रधान होता है । लार्ड मॉरले का कथन है कि यद्यपि सभी सदस्यों की स्थिति एवं उपादेयता समान होती है, सभी एक स्वर से एक समय पर बोलते हैं तथा महत्वपूर्ण अवसर पर एक व्यक्ति की भाँति गिने जाते हैं; किन्तु तब भी परिषद् का अध्यक्ष प्रधान मन्त्री है, जो कि एक

महत्वपूर्ण पद का अधिकारी होता है, उसकी स्थिति तथा अधिकार अपवाद स्वरूप तथा महत्वपूर्ण होते हैं। परन्तु यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश प्रधान मंत्री की स्थिति अमेरिकन राष्ट्रपति की स्थिति से हीन होती है। अमेरिका का राष्ट्रपति अपने किसी भा सदस्य को किसी भी समय परिषद् से बहिष्कृत कर सकता है। किन्तु इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री इस प्रकार का आचरण करने में स्वतंत्र नहीं है। उसको किसी भी मन्त्री को हटाने में पर्याप्त वैधानिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। किन्तु प्रधान मन्त्री की स्थिति सबसे ऊँची होती है। केबिनेट का वही नेता माना जाता है। लार्ड मारले के शब्दों में—"The Prime Minister is the key-stone of the calibre arech."

(६) **संसद सदस्यता**—इस मंत्रि-परिषद् की मूलभूत विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक सदस्य संसद का सदस्य होता है चाहे वह लोक सभा का सदस्य हो अथवा हाउस ऑफ लार्ड्स का, किन्तु सदस्यता का होना अनिवार्य है। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रधान मंत्री किसी ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्ति को अपनी परिषद् में सम्मिलित करता है जो कि न तो पियर (लार्ड) होता है और न लोक सभा का सदस्य ही। ऐसी अवस्था में उसे या तो पियर (लार्ड) की उपाधि दिलाई जाती है अथवा बहुमत प्राप्त सत्तारूढ़ दल का कोई सदस्य अपना त्याग-पत्र देकर सीट खाली कर देता है और वह व्यक्ति उसके निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होकर आ जाता है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वही सीट खाली कराई जाती है जिसको कि दल अपने लिए पूर्ण सुरक्षित समझता है। प्रत्येक विभाग के मन्त्री की उपस्थिति संसद में अनिवार्य होती है। इस प्रकार यह प्रथा सी पड़ गई है कि मन्त्रि-परिषद् का प्रत्येक सदस्य संसद सदस्य अवश्य होता है। अन्यथा वह मन्त्री नहीं बनाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरण से कैबिनेट की मूलभूत विशेषताओं पर प्रकाश पड़ जाता है। वस्तुतः आज की प्रशासन विधा में कैबिनेट का अपना स्थान है। उसकी उपादेयता तथा महत्ता को गौण नहीं कहा जा सकता। यही वह प्रमुख सूत्र है जिसके सहारे इंगलैण्ड की लोक सभा तथा सम्राट का सम्बन्ध जुड़ा रहता है। सभी सदस्य अपने सामूहिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक तथा कैबिनेट की गोपनीयता के प्रति सतर्क रहते हैं। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर कैबिनेट का महत्व अनुदिन बढ़ता चला जा रहा है।

मंत्रि-परिषद् तथा मन्त्रि-मण्डल—बहुधा मंत्रि-मण्डल तथा मंत्रि-परिषद् के विषय में भ्रम हो जाता है। कभी-कभी भ्रमवश दोनों को एक ही समझ लिया जाता है किन्तु दोनों में मौलिक भेद है। इस भेद को स्पष्टतः समझ लेना आवश्यक

है। जब बहुमत प्राप्त दल की नई सरकार संघटित होती है तो उसके सभी सदस्यों की गणना मन्त्रि-मण्डल के अन्तर्गत की जाती है। किन्तु मंत्रि-परिषद् मन्त्रि-मण्डल के अन्तर्गत एक छोटी सी परिषद् होती है जिसमें कतिपय महत्वपूर्ण विभागों के मन्त्रियों को ही सदस्यता प्रदान की जाती है। राम्जे म्योर ने मन्त्रि-परिषद् की व्याख्या करते हुए कहा है, "यह मन्त्रि-मण्डल (Ministry) का हृदय है जिसमें सभी महत्वपूर्ण विभागों के राजनीतिक अध्यक्ष सम्मिलित रहते हैं, साथ ही कुछ प्राचीन तथा प्रतिष्ठित पदों के अधिकारी भी।" मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों का चुनाव निर्वाचन में विजयी एक ही दल के उन सभी सदस्यों का होता है जिनको सरकार के विभिन्न विभाग सौंपे जाते हैं। मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों का उत्तरदायित्व सामूहिक न होकर व्यक्तिगत होता है परन्तु मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। प्रधान मन्त्री अपने मनोनीत व्यक्तियों को ही मन्त्रि-परिषद् में सम्मिलित करता है। प्रशासन सम्बन्धी नीति का नियोजन करना मन्त्रि-परिषद् का कार्य होता है। परन्तु मन्त्रि-मंडल के सभी सदस्य उस सुनियोजित नीति का संचालन पालन करते हैं। मन्त्रि-मंडल की पूर्ण बैटक कभी नहीं होती किन्तु मन्त्रि-परिषद् की बैठक प्रायः हुआ करती है। इस प्रकार सामान्यतया मन्त्रि-मंडल तथा मन्त्रि-परिषद् का भेद ठीक प्रकार से स्पष्ट हो जाता है। किंतु यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि मन्त्रि-मंडल तथा मंत्रि-परिषद् के सदस्यों का नियोजन प्रधान मंत्री ही किया करता है। अतः अपने-अपने उत्तरदायित्वों को सतर्कतापूर्वक दोनों ही सम्हाले रहते हैं। यही कारण है कि प्रशासन प्रणाली ठीक प्रकार से चलती रहती है।

मन्त्रि-परिषद् का संगठन—मन्त्रि-परिषद् के संगठन को भी ज्ञात कर लेना आवश्यक है। मन्त्रि-परिषद् के संगठन में प्रधान मन्त्री का प्रमुख हाथ होता है। वही अपने मनोनीत सदस्यों को इसमें नियुक्त किया करता है। इंगलैण्ड के संविधान में कैबिनेट की सदस्य-संख्या निश्चित नहीं है। उसका निश्चय प्रधान मन्त्री की इच्छा और समयानुकूल आवश्यकता पर ही निर्भर करता है। प्रधान मन्त्री अपनी आवश्यकता के अनुसार सदस्यों की संख्या का निर्धारण तथा विभिन्न पदों का वितरण किया करता है। अठारहवीं सदी में कैबिनेट में ७ से ६ तक सदस्य होते थे। किन्तु १९वीं शताब्दी में इनकी संख्या १०-१५ तक हो गई। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इनकी संख्या बढ़कर २० तक पहुँची। इसके अतिरिक्त तत्कालीन प्रधान मन्त्री लायड जार्ज को एक युद्ध-परिषद् का संगठन पृथक करना पड़ा था। इस परिषद् में ५ सदस्य थे। युद्ध के समाप्त होने पर मन्त्रि-परिषद् की सदस्य-संख्या पुनः घटकर २० रह गई। कैबिनेट के सदस्यों की संख्या में उत्तरोत्तर बढ़ती होने का कारण यह है कि समयानुसार विभिन्न विभागों की भी वृद्धि होती जा रही है। उन विभागों का कार्य सम्भालने के लिए ही सदस्यों

की आवश्यकता पड़ती है। १९४२ में कैबिनेट के अन्तर्गत १० सदस्यों तथा विभिन्न विभागों के १५ मन्त्रियों को भी सम्मिलित किया गया था। किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि इंगलैण्ड में कतिपय ऐसे भी पद हैं जिनके विभागाध्यक्षों को मन्त्रि-परिषद् में अनिवार्यतः सम्मिलित किया जाता है। वे पद निम्नलिखित हैं :—प्रधान मन्त्री, लोर्ड प्रिवीसील, चांसलर आफ एक्सचेकर, परिषद् का लार्ड प्रेसीडेंट, विदेश विभाग, गृह विभाग, राष्ट्र मण्डल, स्काटलैण्ड मन्त्री, राज्य सचिव, प्रतिरक्षा मन्त्री, स्वास्थ्य मन्त्री, शिक्षा मण्डल का अध्यक्ष, व्यापार मण्डल का अध्यक्ष, श्रम मन्त्री, कृषि तथा मत्स्य क्षेत्र इत्यादि के मन्त्रियों को कैबिनेट के अन्तर्गत अवश्य लिया जाता है।

अन्य सदस्यों के चयन में मन्त्री अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से कार्य करता है। वह स्वयं सदस्यों की नामावली तैयार करता है तथा उस पर सम्राट की स्वीकृति प्राप्त करता है। यद्यपि प्रधान मन्त्री सदस्यों के चुनाव में हर प्रकार से स्वतन्त्र है, परन्तु उसको कतिपय कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है सर्वप्रथम उसके सामने दलीय समस्या उठ खड़ी होती है। प्रधान मन्त्री अपने दल की शक्ति के आधार पर ही सरकार में सम्माननीय पद प्राप्त कर पाता है। फलतः उसको अपने दल के सदस्यों को भी सन्तुष्ट करना पड़ता है। अपने दल को असन्तुष्ट करके उसकी स्थिति ही खतरे में पड़ सकती है। अतः दल के सम्मानित व्यक्तियों को वह प्रतिफल प्रदान करने के हेतु उन्हें मंत्रि-परिषद् में स्थान देता है। उसको कतिपय पुराने सदस्य तथा ख्यातनामा नवयुवकों का भी ध्यान रखना पड़ता है। इस कार्य के लिये वह दल के साथ परामर्श करता है तथा अपनी प्रभाव परिधि का सम्यक् उपयोग करते हुए ऐसी सुदृढ़ मन्त्रि-परिषद् का संगठन करता है, जिससे वह अपने दल की प्रतिष्ठा तथा कीर्ति को बढ़ा सके तथा प्रशासन-कार्य भी ठीक प्रकार से चलता रहे। सदस्यों को सन्तुष्ट करने की नीति के अतिरिक्त उनके आचार, निष्ठा, शिक्षा, गुण, तथा सार्वजनिक सेवाओं को भी ध्यान में रखा जाता है। इसके अतिरिक्त सभी सदस्यों में भाषण, तर्क-शक्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व, संघर्षों का सामना करने की क्षमता आदि होना भी आवश्यक समझा जाता है। इसके साथ ही विश्वसनीयता सर्वोच्च गुण होता है। विश्वासघाती सदस्यों की परिषद् अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सकती है।

प्रधान मन्त्री अपनी परिषद् के सदस्यों की नामावली तैयार करता है तथा उस सूची को सम्राट के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करता है। सम्राट उस सूची पर यदि हस्ताक्षर कर देता है, तो प्रधान मन्त्री को अधिकार मिल जाता है तथा उसकी परिषद् प्रमाणित भी हो जाती है। कभी-कभी सम्राट प्रधान मन्त्री द्वारा प्रस्तुत सूची के कतिपय सदस्यों के नामों पर आपत्ति करता है तथा उनके स्थान पर

अन्य व्यक्तियों को रखने का परामर्श दे सकता है। परन्तु यदि प्रधान मन्त्री दृढ़तापूर्वक कहता है तो सम्राट को स्वीकृति देनी पड़ती है। परन्तु यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि सम्राट के बहुमूल्य परामर्श की उपेक्षा सरलतापूर्वक नहीं की जा सकती। प्रधान मन्त्री उस परामर्श का आदर करता है तथा उसके अनुकूल कार्य करने का भी प्रयास करता है। इस प्रकार सम्राट मन्त्रि-परिषद के संगठन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। यद्यपि उसके इस प्रभाव से प्रधान मन्त्री को बाध्य नहीं किया जा सकता है तथापि उसकी उपेक्षा भी नहीं होती है।

मंत्रि-परिषद् के कार्य

इंगलैण्ड में मन्त्रि-परिषद् ही सच्चे अर्थों में कार्यपालिका है। उसके कार्यों का विवेचन सरलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। विधि-निर्माण, प्रशासन तथा नीति-संचालन अनेक कार्यों को कैबिनेट ही संचालित किया करती है। लोक सभा की यह अन्तरंग समिति, वास्तविक कार्यपालिका तथा सर्वसत्ता सम्पन्न होती चली जा रही है। लोक सभा के प्रति उत्तरदायित्व को वहन करती हुई मन्त्रि-परिषद् सम्पूर्ण प्रशासन पर छा गई है। इसके बिना किसी कार्य का संचालन असम्भव नहीं तो कष्टप्रद अवश्य है। प्रत्येक प्रकार के कार्यों को अन्तिम रूप से यही सम्पादित करती है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए इसके कार्यों को निम्नलिखित रूप मे विभक्त किया जा सकता है।

१—विधि-निर्माण सम्बन्धी कार्य—विधि-निर्माण सम्बन्धी समस्त कार्यों को यह मन्त्रि-परिषद् ही सम्पादित करती है। लोक सभा में सत्तारूढ़ दल की ही सरकार बनायी जाती है। उसी की मन्त्रि-परिषद् भी होती है। मन्त्रि-परिषद् के सदस्य ही मिलकर यह विचार करते हैं कि संसद में कौन सा विधेयक प्रस्तुत किया जायगा। प्रधान मन्त्री की अनुमति से अपने-अपने विभागों से सम्बन्धित मन्त्री अपने विभाग की आवश्यकता के अनुसार एक संक्षिप्त रूप-रेखा तैयार करते हैं। उस रूप-रेखा पर सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् गम्भीरतापूर्वक विचार करती है। विचार करने के उपरान्त उस रूप-रेखा को विधेयक का रूप दिया जाता है। यही विधेयक लोक-सभा में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। लोक सभा में बहुमत होने के कारण उक्त विधेयक अवश्य ही पारित हो जाता है। यदि वह विधेयक पारित न हो सका, तो सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् को पद-त्याग करना पड़ता है। पद-त्याग का तात्पर्य दूसरी सरकार का निर्माण है। प्रमुख रूप से यह मन्त्रि-परिषद् विधि योजना निर्माण करती है। इसके साथ यह भी निश्चय करती है कि कौन सी योजना किस परिणाम तक, कितने समय में लोक सभा में क्रियान्वित होगी, उसका क्या ढंग रहेगा ?

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कैबिनेट एक लघु विधि-निर्मात्री सभा के रूप में परिणत हो जाती है क्योंकि आज की राजनीतिक समस्याएँ प्रतिदिन जटिलतर होती जा रही है। अतः उनका समाधान लोक सभा सामूहिक रूप से नहीं कर सकती। इसके साथ ही लोक सभा में विरोधी दल की आलोचनाओं के कारण भी प्रस्तुत या पारित किये जाने वाले विधेयकों के समस्त प्रसंगों पर पूर्ण विचार सम्भव नहीं हो सकता। फलतः इस समस्या का समाधान तथा उस पर पूर्ण विचार मन्त्रि-परिषद् की बैठक में ही कर लिया जाता है। लोक सभा के सदन में तो केवल उसको पारित करना दिखावा प्रक्रिया का सम्पादन मात्र होता है। उसका वास्तविक निर्णय कैबिनेट में ही हो जाता है। लोक सभा में विधेयक प्रस्तुत करने के समय अपने विभाग से सम्बन्धित प्रत्येक विभाग का मन्त्री उपस्थित रहता है क्योंकि उसको अपने विधेयक के समर्थन में विरोधियों द्वारा की गई आलोचनाओं का उत्तर देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्रधान मन्त्री भी इस विधेयक के विरोधों का परिहार करके औचित्य की व्याख्या करता है। जैसा कि डेनियल विट महोदय ने कहा है कि "The legislative ball is thus kept in the hands of the Cabinet at all times."

विधि-निर्माण की समस्त प्रारम्भिक कार्यवाहियों का संचालन कैबिनेट के कार्यालय द्वारा किया जाता है। इस कार्यालय का नेतृत्व अथवा संचालन प्रधान मन्त्री करता है। इसमें बैठक का एजेण्डा बनाया जाता है। सभी महत्वपूर्ण कार्यवाहियों का सारांश उल्लिखित किया जाता है तथा सभी मन्त्रियों को इसकी सूचना दी जाती है। कम से कम दो दिवस पूर्व प्रत्येक विवादास्पद तथ्य तथा आवश्यक संस्मरण-पत्र प्रेषित किये जाते हैं। इससे सभी मन्त्रियों को अपने-अपने विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता है कि किस विषय पर उनको बहस तथा विचार करना है। वस्तुतः लोक सभा के अन्तर्गत विधेयक प्रस्तुत करने के पूर्व ही मन्त्रि-परिषद् में भी सभी प्रकार की तैयारी कर ली जाती है। विभागीय प्रतिवेदन-पत्र, स्थानीय सूचनाएँ, दलीय समाचार तथा आधिकारिक वक्तव्य इत्यादि पहले ही मन्त्रिगण तैयार रखते हैं जिससे कि वे लोक सभा के अन्तर्गत सभी प्रकार की आपत्तियों का प्रत्युत्तर विधिवत् देने में समर्थ रहें। इस प्रकार बैठक में सारी तैयारी के साथ विधेयक बन जाता है। लोक सभा में तो वह केवल दिखावे के लिए रक्खा जाता है।

विधि-निर्माण कार्यों के अन्तर्गत मन्त्रि-परिषद् लोक सभा की स्थायी सामयिक समितियों की भाँति कार्य करती है। इन समितियों के सभी कार्य या तो प्रधान मन्त्री की इच्छा पर निर्भर करते हैं अथवा विधि-निर्माण सम्बन्धी होते हैं। विभिन्न समितियों का संगठन विभिन्न सदस्यों के अधिकार क्षेत्र में कर दिया जाता है।

क्योंकि आज अनेक राजनीतिक समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं जिनका सम्पादन किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं, फलतः समितियों का आश्रय लेना स्वाभाविक है।

मन्त्रि-परिषद् का प्रशासकीय कार्य—विधि-निर्माण के अतिरिक्त मन्त्रि-परिषद् प्रशासक के रूप में भी कार्य करती है। लोक सभा द्वारा पारित विधेयकों को विभिन्न विभागों द्वारा पालन कराने का महत्वपूर्ण कार्य इसी के हाथ में रहता है। प्रसिद्ध संविधान शास्त्री कार्टर का कथन है कि विधान मण्डल के कार्यों की व्याख्या एवं जटिलता के कारण ही संसद ने स्पष्टतया अनेक विधियाँ पारित करके मन्त्रि-परिषद् या मन्त्रियों के अधिकार क्षेत्र में विधि-संचालन, निर्देश एवं क्रियाओं के परिपालन को प्रभावपूर्ण बनाने का अधिकार सौंप दिया है। परन्तु यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कैबिनेट के सभी मन्त्री प्रशासकीय क्षमता सम्पन्न नहीं होते। बहुत से ऐसे भी मन्त्री होते हैं जिनको अपने विभाग के विषय में कुछ भी ध्यान नहीं होता। ये मन्त्री अपने विभाग के उच्च प्रशासक पदाधिकारियों की सहायता से विभागीय नीति का संचालन किया करते हैं। यही कारण है कि वास्तविक प्रशासकीय शक्ति मन्त्रियों के हाथों से निकल कर उच्च अधिकारियों के पास चली गई। फलतः किसी प्रकार के विधेयक के हेतु विभागों के उच्च अधिकारियों का सहारा ग्रहण करना पड़ता है। अधिकारी अपनी अधिकांश इच्छाओं के अनुकूल ही प्रस्ताव पारित करवाते हैं, क्योंकि अकेला मन्त्री कुछ भी नहीं कर सकता, परन्तु विभाग का मन्त्री अपनी राजनीतिक कुशलता, सूक्ष्मता, सारग्राहिता तथा दूरदर्शिता के कारण किसी भी प्रस्ताव को महत्वपूर्ण, सारगर्भित एवं उपयोगी बना सकता है। उनको सम्पूर्ण विभाग की कार्यवाही के परिज्ञान की अपेक्षा नहीं है। वह तो केवल सार रूप में तथ्यों को ग्रहण करके विभागीय प्रशासन को उच्चता की कोटि पर ले जाता है। किन्तु कभी-कभी मन्त्रियों को अपने विभाग के मन्त्रियों के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनेक उच्च अधिकारी अपनी अहम्मन्यता तथा स्वार्थपरता के कारण विभागीय कार्यवाहियों का सम्पादन विधिपूर्वक नहीं करते। इसके फलस्वरूप मन्त्री को लोक सभा में सदस्यों द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी उस मन्त्री को लज्जित भी होना पड़ता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक विभाग का मन्त्री अपने विभाग के लिए उत्तरदायी है क्योंकि वह सरकार का प्रमुख व्यक्ति या जनता का प्रतिनिधि होता है। अतः उसी का उत्तरदायित्व भी होता है। इसके दूसरे पक्ष में उच्च प्रशासकीय अधिकारीगण जनता द्वारा निर्वाचित न होकर सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं। अतः इन पर जनता सीधा आक्षेप नहीं लगा सकती। उसके लिए केवल मन्त्री ही उत्तरदायी होता है। अतः प्रशासन कार्यों में बड़ी सतर्कता,

दक्षता एवं कुशलतापूर्वक कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार प्रशासन-कार्यों में मन्त्रि-परिषद् का ही आधिपत्य रहता है। उसी की नीतियों से सभी विभागों का संचालन होता रहता है। उपर्युक्त विवरण से मन्त्रि परिषद् के सामान्य कार्यकलापों पर प्रकाश पड़ जाता है। वस्तुतः मन्त्रि-परिषद् के कार्य इतने बढ़ चुके हैं कि उनकी परिगणना करना कठिन है। मूलतया कैबिनेट के निश्चयानुसार ही [illegible] प्रारम्भ तथा विसर्जित होता है। समय का निर्धारण भी यहो से किया जाता है। लोक सभा में प्रस्तुत किये जाने वाले सरकारी विवादों पर विचार करने का समय तथा अन्य विधाएँ पहले ही सूचित कर दी जाती हैं। राजस्व की [illegible] आय-व्यय का निर्धारण करना इसी परिषद् का कार्य है। इसके अतिरिक्त देश के अन्तर्गत तथा बाहर महान् एवं उच्च पदाधिकारियों की नियुक्तियों को मन्त्रि-परिषद् ही करती है। वस्तुतः मन्त्रि-परिषद् ही वह कड़ी है जो कि राष्ट्रीय कार्य-पालिका तथा विधान मण्डल को एक सूत्र में बाँधती है। सामान्य प्रशासन से लेकर उच्च प्रशासन तथा विधान निर्माण सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन इसी के हाथों में रहता है। यही कारण है कि विद्वानों ने इसको शासन की आधारशिला कहा है।

मन्त्रि-परिषद् का प्रभुत्व (अधिनायकत्व)—ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल इतनी शक्तियों का प्रयोग करता है, उसका वहाँ की राज-व्यवस्था में इतना महत्वपूर्ण स्थान है कि उसे वहाँ के शासन में अधिनायक की संज्ञा दी गई है। पहले संसद को संप्रभु कहा जाता था किन्तु अब यह स्थिति बदल चुकी है। वास्तव में अब तो कैबिनेट को ही प्रभु कहा जा सकता है क्योंकि जब तक लोक सभा का विश्वास उपलब्ध रहता है तब तक कैबिनेट ही प्रभु रहती है। इसकी प्रभुता पर शीघ्रता तथा सरलता से आक्षेप नहीं किया जा सकता क्योंकि इंगलैंड में दो ही दल हैं। बहुमत प्राप्त सत्तारूढ़ दल का कभी भी विरोध विरोधी दल सफलता-पूर्वक नहीं कर सकता। यही कारण है कि जिस प्रस्ताव को पारित करने का कैबिनेट निश्चय कर लेती है वह पास हो जाता है तथा जिसका विरोध करती है उसको पारित नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः आज शनैः शनैः सभी विधि-निर्माणाधिकार कैबिनेट में सिमटते चले जा रहे हैं। अतः कैबिनेट की प्रभुसत्ता भी उभरती जा रही है। अध्ययन की सुविधा के लिए कैबिनेट की निरंकुशता के निम्नलिखित कारण हो सकते है :

(१) **दलीय अनुशासन**—इंगलैंड में केवल दो ही दल हैं। उनमें से एक सत्तारूढ़ होता है। उसी दल की सरकार बनती है तथा वही अपनी मन्त्रि-परिषद् का भी संगठन करता है। प्रधान मन्त्री दल का नेता होता है। अतः बहुमत प्राप्त वाले दल के सभी सदस्य मन्त्रि-परिषद् की आज्ञाएँ दलीय अनुशासन के आधार पर मानते

है। दल की नीति से पृथक् नीति का निर्धारण, प्रतिस्थापन तथा प्रकाशन सदस्यगण नहीं कर सकते। उनको दल के विपरीत मत प्रकट करने का अधिकार नहीं होता। यदि कोई सदस्य ऐसा करता भी है तो उसके विरुद्ध कार्यवाही की जाती है और उसको दल छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है। दल की सदस्यता के अन्त होने से उसका राजनीतिक जीवन समाप्तप्राय हो जाता है। इंगलैंड के स्वतन्त्र सदस्यों को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं है। अतः दलीय अनुशासन ने कैबिनेट की शक्ति को बहुत मजबूत कर दिया है। उसके विरोधी केवल आलोचना तक ही अपनी निरोध-परम्परा सीमित रखते हैं। विधितः दलीय अनुशासन ने प्रबुद्ध निरंकुशता को जन्म दिया है।

(२) **सामूहिक उत्तरदायित्व**—कैबिनेट का सामूहिक उत्तरदायित्व लोक सभा के प्रति है। इसके सभी मन्त्रीगण एक दूसरे से निकटतम सम्पर्क स्थापित रखते हैं, सहायता करते हैं तथा साथ-साथ किसी प्रकार की वैधानिक आपत्ति का सामना भी करते हैं। यह निर्विवाद है कि किसी एक मन्त्री की पराजय सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल की पराजय होती है। इसके परिणामस्वरूप सरकार को पद-त्याग करना पड़ता है। अतः इस सामूहिक उत्तरदायित्व ने प्रबुद्ध निरंकुशता को जन्म दिया है। जहाँ पर ऐसे सामूहिक उत्तरदायित्व की प्रथा नहीं है वहाँ मन्त्रिमण्डल उतना निरंकुश नहीं होता जितना कि ब्रिटेन का है।

(३) **विघटन का अधिकार**—मन्त्रि-परिषद् के पास लोक सभा को किसी भी समय विघटित करा देने का पूर्ण अधिकार है। प्रधान मन्त्री अपनी कमजोर स्थिति को देखकर सम्राट को लोक सभा के विघटन का परामर्श देता है। इस प्रकार लोक सभा विघटित हो जाने के कारण विरोधी दल प्रायः आलोचनाएँ नहीं करता क्योंकि निर्वाचन में हो सकता है कि उसके अनेक सदस्य हार जायँ। इसके अतिरिक्त निर्वाचन में धन तथा समय की भी हानि होती है। विरोधियों द्वारा तीव्र आलोचनाओं के समय प्रधान मन्त्री लोक सभा के विघटन की धमकी देता है। इससे सारा विवाद तथा विरोध शान्त पड़ जाता है। इस अधिकार ने ही वास्तविक निरंकुशता का सृजन किया है। किसी दल की मन्त्रि-परिषद् इस अधिकार का प्रयोग वीटो पावर (Veto Power) की भाँति करती है।

(४) **कार्याधिक्य**—आज के युग में दिन-प्रतिदिन सरकार के कार्यक्षेत्रों तथा उत्तरदायित्वों के परिमाण में वृद्धि होती जा रही है। अतः मन्त्रि-परिषद् सुचारु रूप से अपने कार्यकलापों को नहीं सम्भाल सकती। इसलिए लोक सभा में विभिन्न विभागों के विधेयकों को पारित करने के लिए केवल उसकी संक्षिप्त रूपरेखा ही प्रस्तुत की जाती है। विधेयक पारित होने के उपरान्त विभाग से सम्बन्धित मन्त्री महोदय अपनी आवश्यकता के अनुसार निजी आदेशों को प्रचलित करते हैं। इससे

निरंकुशता को और भी बढ़ावा मिलता है क्योंकि मन्त्री अपने छोटे कानून भी बना सकते हैं।

(५) **प्रशासकीय न्याय**—मन्त्रिमण्डल को प्रशासकीय मामलों पर न्याय करने का भी महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है। अपने विभाग से सम्बन्धित किसी भी विवाद का निश्चय तथा निर्णय स्वयं मन्त्री कर सकता है। मन्त्रिगण सामान्य न्याय सिद्धांतों का पालन करते हैं किन्तु किसी भी विवाद के निर्णय करने के बाद, उसका कारण बताने के लिये बाध्य नहीं किये जा सकते। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मन्त्रि-परिषद् की निरंकुशता को इस अधिकार ने अधिक शक्ति प्रदान की है।

अन्त में लावेल के शब्दों में 'मन्त्रिमण्डल की निरंकुशता वह निरंकुशता है जिसे अधिकतम प्रचार के साथ प्रयोग में लाया जाता है, तो सदा आलोचना की कसौटी पर कसी रहती है और जनमत के अनुसार ढलती रहती है तथा जिसे अविश्वास के प्रस्ताव और अगले चुनाव का खतरा नहीं रहता है।'

उपर्युक्त विवरणों से मन्त्रि-परिषद् की प्रबुद्ध निरंकुशता का ज्ञान हो जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इसका यह अर्थ नहीं है कि मन्त्रि-परिषद् मनमाना कार्य कर सकती है। उसके ऊपर भी कतिपय प्रतिबन्ध हैं। एमरी तथा प्रोफेसर लास्की ने मन्त्रि-परिषद् की तथाकथित तानाशाही का खण्डन करते हुए लिखा है कि मन्त्रि-परिषद् के ऊपर भी लोक सभा का नियन्त्रण रहता है। यह लोक सभा की नितान्त उपेक्षा नहीं कर सकती। यदि लोकमत की उपेक्षा करके भी मन्त्रि-परिषद् अपनी निरंकुशता का प्रदर्शन करती है, तो आगामी निर्वाचन में उसको बहुमत प्राप्त हो जाना कठिन हो जाता है। इसलिये मन्त्रि-परिषद् कभी भी घोर निरंकुशता का प्रदर्शन नहीं कर सकती है। उस पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध लगे रहते हैं।

(१) **लोक सभा का नियंत्रण**—यह सत्य है कि मन्त्रि-परिषद् लोक सभा पर अधिकार रखती है किन्तु उसके साथ ही यह भी सत्य है कि लोक सभा मन्त्रि-परिषद् पर पूर्ण नियन्त्रण रख सकती है। लोक सभा के विश्वास पर मन्त्रि-परिषद् का अस्तित्व है। यदि उसका विश्वास समाप्त हो जाता है तो मन्त्रि-परिषद् की समाप्ति हो जाती है। विश्वास के अतिरिक्त लोक सभा निम्नलिखित साधनों द्वारा मन्त्रि-परिषद् पर नियन्त्रण बनाये रखती है।

(क) **प्रश्न करने का अधिकार**—लोकसभा का कोई भी सदस्य सत्तारूढ़ दल के किसी भी मन्त्री से उसके विभाग से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के प्रश्न पूछ सकता है। सरकार की अव्यवस्था, विभागीय उदासीनता, कार्यों के प्रति असावधानता तथा प्रशासन की त्रुटियों को लोकसभा में लाया जा सकता है। इससे प्रत्येक मन्त्री को अपने विभाग की पूरी जानकारी रखनी पड़ती है। मन्त्री को प्रश्न का

उत्तर देने के लिये बाध्य किया जा सकता है किन्तु किसी प्रश्न के उत्तर को मन्त्री नहीं भी दे सकता है। यदि उस उत्तर में विभागीय गोपनीयता का भाव निहित होता है, तो मन्त्री उसे सार्वजनिक हित में न बतलाने की घोषणा कर सकता है। परन्तु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक सभा में प्रश्न पूछे जाने के कारण मन्त्रियों को सतर्क रहना पड़ता है। इस सतर्कता के कारण ही उसकी निरंकुशता का निदान हो भी जाता है।

(ख) वाद-विवाद—लोकसभा को सरकारी नीतियों पर वाद-विवाद करने का अधिकार प्राप्त है। विपक्षी दल का नेता सरकार से वाद-विवाद का समय तथा तिथि के निर्धारण की माँग कर सकता है। सत्तारूढ़ दल विपक्षी दल को समय देने के लिये बाध्य होता है। वाद-विवाद का समय निश्चित कर दिये जाने पर सरकारी नीतियों की आलोचना की जाती है। कभी-कभी वाद-विवाद बहुत लम्बे काल तक चला करते हैं। सरकार की सभी नीतियों, कार्यों तथा योजनाओं की आलोचनाएँ होती हैं। इस आलोचना में विरोधी दल द्वारा आक्षेप लगाये जाते हैं तथा उन विभिन्न आरोपों का उत्तर सरकार पक्ष को देना पड़ता है। इसलिये सरकार इन आलोचनाओं के प्रति बहुत ही सजग रहती है। वस्तुतः लोक सभा का यह अस्त्र ऐसा है जिसके भय से मन्त्रि-परिषद् अपनी निरंकुश भावना को दबाकर रखती है।

(१) काम रोको प्रस्ताव—काम रोको प्रस्ताव का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि किसी सार्वजनिक कार्य अथवा प्रशासकीय अत्याचारों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करना होता है तो लोक सभा में काम रोको प्रस्ताव प्रश्न करने के घंटे के बाद प्रस्तुत किया जाता है। यदि इस प्रस्ताव पर ४० सदस्यों की सहमति मिल जाती है तो बैठक के अन्त में उस पर विचार किया जाता है और वाद-विवाद भी किया जाता है। यदि वाद-विवाद में बहुमत प्रस्ताव के पक्ष में होता है, तो सरकार के प्रति अविश्वास की भावना उभर आती है। मन्त्रि-मण्डल में ऐसे प्रस्तावों से बहुत ही सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि इससे सरकार की कमजोर नीति प्रकाश में आ जाती है। अतः यह प्रस्ताव सरकार की निरंकुशता किसी हद तक सीमित कर देता है।

(२) लोक नियन्त्रण—मन्त्रि-मण्डल पर लोकमत का भी स्पष्ट प्रभाव रहता है। प्रजातन्त्रात्मक सरकार में लोकमत की उपेक्षा करके किसी भी सरकार का अस्तित्व नहीं रह सकता। लोकमत सरकार की किसी भी लोक विरुद्ध नीति का बहिष्कार कर सकता है। पूँजीपति, श्रमिक तथा सामान्य जनतन संगठित होकर अपने अनुकूल कानून बनवा सकती है। यदि उसके मत की उपेक्षा की जाती है तो,

सरकार तथा उस दल का भविष्य खतरे से बाहर नहीं रह सकता। इस प्रकार प्रत्येक सरकार को लोकमत का आदर करना पड़ता है।

(३) **सम्राट का नियंत्रण**—विश्व की अनेक प्रजातन्त्र सरकारें जनता का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा उनको प्रशासन का अधिकार जनता द्वारा ही मिला है। परन्तु इंगलैंड की सरकार इनका अपवाद है। यहाँ पर शासन सूत्र शनैः-शनैः सम्राट की तरफ से लोक सभा को प्राप्त हुआ है। अतः अभी भी सम्राट की महत्ता गौण नहीं है। निरंकुशतापूर्वक नीति-संचालन करने वाले मन्त्रि-मण्डल को सम्राट चेतावनी दे सकता है। उसकी चेतावनी में लोकमत की भी झलक होती है। इसलिये किसी सीमा तक सम्राट भी मन्त्रि-परिषद् तथा उसके तथाकथित मन्त्रियों पर अनुशासन बनाये रख सकता है। वह उन्हें स्वतन्त्र नहीं होने देता हैं।

मन्त्रिमण्डल के अधिकार विषयक उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ब्रिटेन की प्रशासन-व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। परन्तु उसे अधिनायक की संज्ञा देना समीचीन नहीं। वस्तुतः अधिनायकतंत्र जिन लक्षणों से संपृक्त होता है वे विशेषताएँ ब्रिटिश कैबिनेट में नहीं हैं। जैसा कि एक विद्वान् ने लिखा है :

"ब्रिटिश कैबिनेट का अधिनायकतन्त्र, लोकतन्त्र द्वारा परिपोषित और संरक्षित है।"

उपर्युक्त विवरणों से मन्त्रिमण्डल की तथाकथित निरंकुशता के प्रतिबन्धों पर प्रकाश पड़ जाता है। कोई भी मन्त्रिमण्डल न तो पूर्ण निरंकुश ही होता है और न पूर्ण प्रतिबन्धित ही। मन्त्रि-परिषद् तथा शासन के सहयोगी अन्य तत्वों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी ज्ञात कर लेना परमावश्यक है। कैबिनेट का अन्य संस्थाओं से भी गहरा सम्बन्ध है। विशेषकर सम्राट तथा संसद के साथ कैबिनेट के सम्बन्ध किस प्रकार के होते हैं ? उनका औचित्य क्या है ? आदि प्रश्नों पर भी विचार कर लेना अत्यावश्यक है।

सम्राट तथा कैबिनेट

जैसा कि पहले प्रकाश डाला जा चुका है कि इंगलैंड की कार्यपालिका को दो प्रमुख विभागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथमतः सम्राट में कार्यपालिका की समस्त शक्तियाँ निहित हैं। दूसरे मन्त्रि-परिषद् भी कार्यपालिका के नाम से ही पुकारी जाती है। किन्तु सम्राट औपचारिक कार्यपालिका है जबकि मन्त्रि-परिषद् वास्तविक कार्यपालिका है। यद्यपि वास्तविक कार्यपालिका आदि का स्रोत सम्राट है किन्तु उस स्रोत का सारा प्रवाह अब मन्त्रि-परिषद् में विद्यमान है। कहने का

तात्पर्य यह है कि मन्त्रि-परिषद् सम्राट के नाम से कार्यों का सम्पादन करती है। सम्राट केवल बाह्य उपचार मात्र है। यही कारण है कि सम्राट तथा इस वास्तविक कार्यपालिका का घनिष्ठतम सम्बन्ध है। कैबिनेट किसी भी नीति का निश्चय करती है, सम्राट उस पर अपनी स्वीकृति देता है। कभी-कभी सम्राट भी प्रधान मन्त्री को परामर्श देता है, कैबिनेट उस पर विचार करती है। इस प्रकार वे एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तथा शासन के विभिन्न भागों को प्रभावित करते हैं। कभी ऐसा भी अवसर आता है कि प्रधान मन्त्री द्वारा प्रस्तावित नीति पर सम्राट असहमत होता है तथा उसको ठीक करने के लिये परामर्श देता है। यदि प्रधान मन्त्री सम्राट से सहमत होता है तो वह नीतियों में यथेष्ट परिवर्तन करता है। यदि वह अपनी नीति पर ही अटल रहता है तो सम्राट को झुकना पड़ता है। किन्तु साधारणतया सम्राट की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त पारस्परिक सम्बन्धों के हेतु प्रधान मन्त्री सम्राट को प्रशासनात्मक, विधि-निर्माणात्मक कार्यवाहियों की पूर्ण सूचनाएँ देता है। अन्य मन्त्री गण भी सम्राट से मिलकर उसको शासन क्रिया से अवगत कराते रहते हैं किन्तु एक कुशल राजनीतिक सम्राट स्वयं ही सम्पूर्ण प्रशासन विधा को अन्य साधनों द्वारा जाना करता है। इससे दोनों ही एक दूसरे के सम्पर्क में बने रहते हैं। इस पारस्परिक सम्बन्ध के कारण ही दोनों कार्यपालिकाएँ कुशलता-पूर्वक कार्य सम्पादित किया करती हैं। जहाँ तक कार्यों का प्रश्न है एक दूसरे पर दोनों ही निर्भर हैं।

मन्त्रि-परिषद् तथा लोक सभा—मन्त्रि-परिषद् तथा लोक सभा में भी पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। विधि-निर्माण, प्रशासन तथा नीति-निदेशन के क्षेत्र में दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। कैबिनेट में जिस विधेयक के मूल रूप पर विचार किया जाता है, संसद उसी को विधि बनाकर मूर्तरूप दे डालती है। जिस नीति का निर्धारण मन्त्रि-परिषद् करती है, संसद् उसका समर्थन किया करती है। यदि संसद समर्थन न करे, तो कैबिनेट सर्वथा अस्तित्व विहीन हो सकती है। १९वीं शताब्दी तक लोक सभा की उपादेयता तथा महत्ता अत्यधिक थी। परन्तु अब वही महत्ता मन्त्रि-परिषद् को प्राप्त है। मन्त्रि-परिषद् यद्यपि आकार में लघु है किन्तु लोक सभा पर इसी का अधिकार छाया रहता है। कैबिनेट की इच्छा के बिना संसद का कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। जिस प्रस्ताव का विरोध कैबिनेट करती है उसको कभी भी पारित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक विधेयक पर पहले मन्त्रि-परिषद् ही विचार करती है, उसके बाद लोक सभा उस पर अपनी स्वीकृति देती है। लोक सभा यदि मन्त्रि-परिषद् के विपरीत कार्य करती है, तो मन्त्रि-परिषद् सम्राट के आदेशानुसार संसद का विघटन करा सकती है। इस प्रकार संसद तथा मन्त्रि-परिषद् में पर्याप्त

घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। एक का दूसरे के अभाव में अस्तित्व नहीं रह सकता। यदि संसद का विघटन होता है तो मन्त्रि-परिषद् भी समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार मन्त्रि-परिषद् के साथ ही लोक सभा का अस्तित्व मिट सकता है। जैसा कि प्रो० कीथ ने कहा है, "Apart from party loyalty the Cabinet possesses over its followers and to some extent over the Opposition, a powerful weapon in the possibility of securing a dissolution of Parliament."

उपर्युक्त वर्णन से मन्त्रि-परिषद् के विभिन्न उपादानों पर प्रकाश पड़ जाता है। मन्त्रि-परिषद् वह कड़ी है जो सम्राट तथा संसद को एक सूत्र में बाँधे रखती है। अतः ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासन तथा संविधान में इस परिषद् का अपना विशिष्ट स्थान है।

अध्याय | ५

प्रधान मन्त्री

प्रश्न ६—ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री के अधिकार एवं शक्तियों की विवेचना कीजिये।

प्रधान मन्त्री

प्रधान मन्त्री का पद इंगलैण्ड की संसदीय व्यवस्था का परिणाम है। संसदीय संस्थानों के विकास के साथ ही साथ प्रधान मन्त्री के पद का भी विकास हुआ है। इस पद का उदय हैनोवर राजवंश के राजत्व काल में हुआ था, वालपोल को सम्राट की मन्त्रिपरिषद का प्रथम मन्त्री (First Minister) कहा जाता था, उस समय तक 'प्राइम मिनिस्टर' (Prime Minister) शब्द का प्रयोग नहीं होता था। इस शब्द का पहली बार प्रयोग सन् १८७८ ई० में बर्लिन की सन्धि में किया गया। उसके उपरांत इंगलैण्ड के १९१७ ई० के 'चेकर्स स्टेट एक्ट' (Chequers State Act) में इस नाम का जिक्र आया परन्तु इसका विधिवत् उल्लेख

१९३७ ई० के 'मिनिस्टर्स आफ दि क्राउन' (Ministers of the Crown) नामक अधिनियम में किया गया। अब तो प्रधान मन्त्री का पद इंगलैण्ड की कैबिनेट पद्धति का एक अपरिहार्य तथ्य है। लार्ड मार्ले के शब्दों में प्रधान मन्त्री कैबिनेट रूपी मेहराब का प्रथम स्तम्भ है। ग्लेडस्टन ने उसकी स्थिति पर विचार करते हुए कहा है कि—

"Nowhere there is a man who has so much power with so little to show for it in the way of formal title or prerogative."

इंगलैण्ड की प्रशासन-प्रणाली में प्रधान मन्त्री का अपना विशिष्ट स्थान है। वह सम्पूर्ण देश का नेता, विधि-निर्माता तथा सरकार का अधिकृत वक्ता होता है। यही कारण है कि विद्वानों ने उसे मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों में प्रथम माना है। वस्तुतः प्रधान मन्त्री का पद, उसकी प्रतिष्ठा, अधिकार एवं कर्त्तव्य महान् है। सारा देश उसी की तरफ आँख लगाये रहता है। इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री किन्हीं अर्थों में सम्राट से भी बढ़कर है। अतः ब्रिटिश प्रधान मन्त्री के अधिकार तथा कार्यों को समझ लेना परमावश्यक है।

प्रधान मन्त्री की नियुक्ति—कुछ समय पूर्व सम्राट अपनी इच्छा के अनुकूल प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता था, इसके अतिरिक्त प्रधान मंत्री को व्यापक अधिकार भी उपलब्ध नहीं थे। परन्तु निर्वाचनों की समुचित प्रक्रिया का विधान होने से अब यह स्थिति बदल गई है। अब राजा को नियुक्ति के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। इंगलैण्ड में केवल दो ही मुख्य दल हैं। अतः किसी न किसी का बहुमत होता ही है। इसलिए बहुमत प्राप्त दल के नेता को सम्राट मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमंत्रित करता है। व्यक्तिगत रूप से सम्राट चाहे उस व्यक्ति से विरोध रखता हो किन्तु बहुमत प्राप्त दल के नेता होने के कारण उसे प्रधान मन्त्रित्व से विधितः कोई रोक नहीं सकता है। उदाहरणार्थ साम्राज्ञी विक्टोरिया ग्लैडस्टन से घृणा रखती थी किन्तु विक्टोरिया ने उसको चार बार सरकार बनाने के लिये बुलाया था। यह अभिसमयात्मक संविधान है। यहाँ पर उल्लेखनीय विषय यह है कि इस प्रथा के पूर्व सम्राट हाउस ऑफ लार्ड्स से भी किसी योग्य व्यक्ति को प्रधान मन्त्री बना सकता था। किन्तु बाद में यह अभिसमय (Convention) हो गया कि प्रधान मन्त्री केवल लोक सभा का ही सदस्य हो सकता है, लार्ड सभा का नहीं। क्योंकि प्रधान मन्त्री की सरकार लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है न कि लार्ड सभा के प्रति। इसलिये लार्ड सभा के सदस्यों को प्रधान मन्त्री बनाना समाप्त कर दिया गया। यही कारण है कि १९३२ में लार्ड

कर्जन को लार्ड सभा के सदस्य होने के कारण मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिये आमंत्रित नहीं किया गया था। यद्यपि वह बहुत योग्य प्रशासक तथा अनुभवी राजनीतिज्ञ था। इसकी अपेक्षा बाल्डविन को बुलाया गया था जो लोक सभा का सदस्य था। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रधान मन्त्री के पद पर उसी की नियुक्ति की जा सकेगी जो लोक सभा का सदस्य हो तथा बहुमत दल का नेता हो। इस प्रकार सम्राट प्रधान मन्त्री की औपचारिक विधि से नियुक्ति करता है।

प्रधान मन्त्री के व्यक्तिगत गुण

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त प्रधान मन्त्री में कतिपय वैयक्तिक गुणों का भी होना आवश्यक समझा जाता है। प्रधान मन्त्री वही व्यक्ति हो पाता है जिसको राजनीति का पर्याप्त, प्रौढ़ तथा समुचित ज्ञान होता है। जो बुद्धिमान तथा कुशल नवयुवक बहुत पहले राजनीति में सक्रिय भाग लेते हैं तथा बारम्बार लोक सभा के सदस्य चुने जाते हैं, उन्हीं को कभी प्रधान मन्त्री का पद प्राप्त हो जाता है। प्रसिद्ध संविधानशास्त्री मनरो का कथन है कि ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री वही हो सकता है जो उच्च कुल प्रसूत, सुशिक्षित तथा कर्मठ होता है, जो राजनीति में प्रारम्भिक अवस्था में ही प्रवेश करता है तथा राजनीति ही अपना व्यवसाय बना लेता है।

वस्तुत: प्रधान मन्त्री का पद गुरुतर उत्तरदायित्वों से पूर्ण है। इस पद पर सामान्य व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। असाधारण एवं सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति ही प्रधान मन्त्री के पद का उत्तरदायित्व सम्भाल सकता है। डॉ० जेनिंग्स का कथन है कि "प्रधान मन्त्री को केवल जनता के विचारों का एक ही अध्येता नहीं होना चाहिये, अपितु उसको प्रचार-कार्य में भी दक्ष होना आवश्यक है। उसे यह परिज्ञान होना चाहिये कि क्या कहना है, कब कहना है तथा कहाँ कुछ भी नहीं कहना है।"

"The Prime Minister has thus to be not only a close student of public opinion but also an expert in propaganda. He must know what to say, when to say it and when not to say anything."
— Dr. Jennings.

प्रधान मन्त्री यंगर पिट (Younger Pitt) के अनुसार प्रधान मन्त्री में प्रथम वक्तृत्व शक्ति, दूसरे ज्ञान, तीसरे परिश्रम और अन्त में धैर्य होना चाहिए—"Eloquence first, then knowledge, thirdly toil and lastly patience."

प्रो० लास्की ने प्रधान मन्त्री के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि विवेक, कौशल, मनुष्यों पर शासन करने की शक्ति, विश्वसनीय व्यक्तियों की पहचान,

प्रभावशाली वक्तृत्व की क्षमता, तथा समुचित शिक्षात्मक निर्णय कि वह दल तथा लोकमत से आगे तो अवश्य हो किन्तु इतना न हो कि उसका सुगमतापूर्वक पालन न हो सके, एक ऐसी महत्वाकांक्षा जो आगे तो बढ़ाये पर साथ ही अपरिहार्यता के विषय में सजग हो, व्यक्तियों या कार्यों के विषय में तात्कालिक निर्णय के प्रसंग में व्यग्रता, ये सब ऐसे गुण हैं जिनके बिना किसी प्रधान मन्त्री का काम नहीं चल सकता।

प्रो॰ मनरो ने अन्यत्र प्रधान मन्त्री के लिए अपेक्षित गुणों की चर्चा करते हुए कहा है कि "ब्रिटेन का प्रतिनिधिक प्रधान मन्त्री सुकुलीन, सुशिक्षित, सुसमृद्ध ऐसा व्यक्ति रहा है जिसने राजनीति में अपने जीवन के प्रारम्भिक चरणों में प्रवेश किया और उसे जीवन का व्यवसाय बना लिया।"

"The typical premier of Britain has been, therefore a well born, well educated, well to do man who entered politics earlier and made it his profession."

इस प्रकार उपर्युक्त योग्यताएँ किसी भी प्रधान मन्त्री में होनी आवश्यक हैं। प्रधान मन्त्री का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि उसका सभी सम्मान करें तथा वह सफलतापूर्वक एक हाथ से विरोधियों की नाड़ी परखे तथा दूसरे हाथ से शासन-सूत्र का सफलतापूर्वक संचालन करे। अपनी वैयक्तिक प्रतिभा के कारण प्रधान मन्त्री अधिक सफलतापूर्वक कार्यों का सम्पादन कर सकता है।

प्रधान मन्त्री के अधिकार तथा कार्य

इंगलैंड का प्रधान मन्त्री ही वास्तविक कार्यपालिका के प्रधान के रूप में कार्य करता है। उसके अधिकार तथा कार्य दोनों महत्वपूर्ण हैं। विधान ने प्रधान मन्त्री को अनेक अधिकार प्रदान किये हैं। शनैः शनैः समय के साथ ही उसके अधिकारों में वृद्धि तथा कार्यों का क्षेत्र व्यापक होता जा रहा है। सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के लिए नीति का निर्धारण तथा प्रशासन कार्यों का सतर्कतापूर्वक अवलोकन करने के लिये प्रधान मन्त्री को अत्यन्त सजग रहना पड़ता है। प्रधान मन्त्री ही सब कार्यों के लिये अन्तिम रूप से उत्तरदायी होता है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए प्रधान मन्त्री के कार्यों तथा अधिकारों को निम्न रीति से रक्खा जा सकता है।

(१) मन्त्रि-परिषद् की रचना—प्रधान मन्त्री अपनी इच्छानुकूल ही मन्त्रि-परिषद का निर्माण करता है। वह मनोनीत सदस्यों को ही मन्त्रि-परिषद में सम्मिलित करता है। प्रधान मन्त्री द्वारा प्रस्तावित सदस्य-सूची पर सम्राट अपनी स्वीकृति दे देता है। उसको इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। सम्राट कभी-कभी किसी नाम पर आपत्ति कर सकता है तथा उसके स्थान पर किसी अन्य सदस्य

के नाम का प्रस्ताव रख सकता है। किन्तु प्रधान मन्त्री उनकी नीति को मानने के लिए बाध्य नहीं है। सामान्यतया वह सम्राट का परामर्श मान लेता है। प्रधान मन्त्री अपने साथियों के चयन में भी सभी प्रकार के सदस्यों का ध्यान रखता है। धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक सदस्यों को भी अपने साथ रखने का प्रयास करता है। इसके साथ ही इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड आदि देशों के भी सदस्यों को अवश्य ही सम्मिलित करता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भी प्रत्येक स्थान के सदस्यों का विचार प्रधान मन्त्री को पहले ही करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अपने दल के सम्मानित नेताओं एवं कर्मठ कार्यकर्ताओं की उपादेयता पर भी विचार-विमर्श करना पड़ता है। इस प्रकार मन्त्रि-परिषद् के निर्माण में यद्यपि प्रधान मन्त्री पूर्ण स्वतन्त्र होता है किन्तु कतिपय सीमाओं के कारण वह बँधा रहता है; विशेष कर अपने दल की इच्छा का पालन उसे करना ही पड़ता है क्योंकि इसी के बल पर उसको प्रधान मन्त्री का पद प्राप्त होता है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रधान मन्त्री का अपने मन्त्रिमण्डल के निर्माण में महत्वहीन अधिकार रहता है। वास्तव में वह मन्त्रिमण्डल का सर्वेसर्वा होता है। जैसा कि एमरी ने कहा है कि :

"The British Prime Minister has never been under any sort of dictation either from Parliament or from a Party executive in making up his Government.."

(२) **विभागों का वितरण**—ब्रिटेन की लोक सभा में बहुमत प्राप्त सत्तारूढ़ दल का प्रधान नेता तथा अधिष्ठाता ही प्रधान मन्त्री होता है। वही सभी विभागों का सम्यक् वितरण विभिन्न मन्त्रियों में करने का अधिकारी है। प्रधान मन्त्री विभिन्न सदस्यों की प्रशासकीय क्षमता का मूल्यांकन करता है तथा उनकी योग्यता के अनुकूल ही विभागों का वितरण करता है। यद्यपि यह नियम नहीं है कि वाणिज्य विभाग का उत्तरदायित्व उसे ही सौंपा जाय जो वाणिज्य विषयक कार्यकलापों का पूर्ण ज्ञान रखता हो। किन्तु सामान्य प्रशासकीय क्षमता अपेक्षित होती है। युद्ध अथवा रक्षा विभाग का मन्त्री कोई साहित्यकार भी हो सकता है। कभी कभी प्रधान मन्त्री को विभागों के वितरण में अपने साथियों की इच्छा का भी पालन करना पड़ता है। एक बार प्रधान मन्त्री रेम्जे मैक्डोनल्ड परराष्ट्र मन्त्रालय स्वयं ही सम्भालना चाहते थे किन्तु उन्हीं के दल के एक प्रसिद्ध सदस्य हण्डरसन ने प्रधान मन्त्री को बाध्य करके परराष्ट्र मन्त्रालय का उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लिया। किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ऐसी स्थिति सर्वत्र नहीं होती है। इस प्रकार विभागों के वितरण में प्रधान मन्त्री का ही प्रमुख हाथ होता है।

(३) **नियुक्ति एवं पदच्युति**—प्रधान मन्त्री अनेक अधिकारियों की नियुक्ति करता है तथा उनको पदच्युत करने का भी अधिकारी है। विभिन्न विभागों के मन्त्रियों की नियुक्ति में प्रधान मन्त्री की ही अधिकार-शक्ति काम करती है परन्तु मन्त्रियों के दुराचरण, कार्य के प्रति असावधानता, प्रधान मन्त्री के प्रति निष्ठा का अभाव एवं अनुत्तरदायित्व के फलस्वरूप वह अपने तथाकथित मन्त्रियों को पदच्युत भी कर सकता है। प्रधान मन्त्री विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है तथा अन्य राष्ट्रों में राजदूत नियुक्त किया करता है। इस प्रकार प्रधान मन्त्री विभिन्न रूप से नियुक्तियों तथा विमुक्तियों को नियमित करता रहता है।

(४) **परामर्श** प्रधान मन्त्री परामर्श देने का भी कार्य करता है। ग्रेट ब्रिटेन के विभिन्न मन्त्रियों को विभागीय कठिनाइयों तथा समस्याओं के समाधान के लिए प्रधान मन्त्री महत्वपूर्ण परामर्श दिया करता है। जब कभी किसी मन्त्री को आवश्यकता पड़ती है तो वह अपने प्रधान मन्त्री की सलाह प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त विभागीय विवादों का भी समाधान यही करता है।

(५) **सभापतित्व**—प्रधान मन्त्री विभिन्न सभाओं तथा समितियों का सभापतित्व भी करता है। मन्त्रि-परिषद् का यही अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त विभागाध्यक्ष मन्त्रियों की समिति सभा का भी सभापतित्व प्रधान मन्त्री ही करता है।

(६) **संसद का सत्र**—प्रधान मन्त्री यह निश्चय करता है कि संसद का सत्र कब बुलाया जाय तथा कब उसका विसर्जन किया जाय। संसद के अन्तर्गत उपस्थित किये जाने वाले विधेयकों का निश्चय तथा उनके तारतम्य का निर्णय करता है। इसके अतिरिक्त विधेयकों पर वाद-विवाद का समय तथा विरोधी दल की आलोचनाओं का समय भी इसी के द्वारा निश्चित किया जाता है।

(७) **लोक सभा का विघटन**—प्रधान मंत्री लोकसभा का विघटन कर सकता है। जब कभी उसके दल की स्थिति कमजोर पड़ जाती है तो प्रधान मन्त्री सम्राट को संसद के विघटन का परामर्श देता है। फलतः सम्राट संसद को विघटित कर देता है। इस प्रकार अपनी तथा अपने दल की डावांडोल स्थिति को वह सम्भाल लिया करता है। नूतन निर्वाचन में यदि उसका दल पुनः बहुमत प्राप्त करता है तो फिर इस प्रकार से कार्य किया करता है।

(८) **युद्ध तथा सन्धि**—ग्रेट ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री युद्ध तथा सन्धि विषयक कार्यों को अपने अधिकार से सम्पादित करता है तथा विदेशों से सम्बन्ध रखने वाली सभी नीतियों का नियंत्रण किया करता है। युद्ध तथा सन्धि में अन्तिम निर्णय प्रधान मन्त्री का ही होता है। वह सम्राट् के नाम से इन कार्यों को करता है।

उपर्युक्त विवरणों से प्रधान मन्त्री के कार्य, शक्ति तथा अधिकारपरता पर पूर्ण प्रकाश पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे रूप में उसके गुणों, कार्यों एवं स्थिति का विचार किया जा सकता है। विभिन्न विद्वानों ने प्रधान मन्त्री की स्थिति पर अपने विचार प्रकट किये हैं। **प्रो० लास्की** ने कहा है कि प्रधान मन्त्री सम्पूर्ण सरकार की आधारशिला है। वह केवल बहुमत प्राप्त दल का नेता नहीं है, अपितु बेजहाट के अनुसार वह कार्यपालिका का प्रमुख भी है। वह विभागों के विवादों का निर्णय करता है। सम्राट् की सहमति से वह किसी भी सहयोगी से त्यागपत्र की माँग कर सकता है। इस उदाहरण से उसकी स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ जाता है। किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित तथ्यों से भी उसकी स्थिति स्पष्ट हो सकती है।

संसद का नेता—प्रधान मन्त्री ही संसद का नेता होता है। उसकी इच्छा के अनुसार ही संसद का कार्य होता है। विधेयक पारण, वाद-विवाद, नीति-निर्धारण, संसद सत्र का समारम्भ तथा विसर्जन सब कुछ इसी के हाथों में रहता है। संसद का नेता प्रधान मन्त्री यदि कुशल राजनीतिक, अनुभवी प्रशासक तथा दूरदर्शी होता है तो वह संसद से अपने मनोवांछित कार्य करा लेता है। सरकार की तरफ से समस्त कार्य-कलापों का अधिकृत नेतृत्व इसी को उपलब्ध है। **समरी** के शब्दों में, "प्रधान मन्त्री का स्थान संकट-काल में अधिनायक से कम नहीं है। वह मंत्रिमण्डल का अधिकारी है और उसका निर्माता भी। उसके संगठन में वह किसी भी समय परिवर्तन ला सकता है। संसद को भंग करना या मंत्रिमण्डल का पद-त्याग देना उसी की राय से होता है। वह उसकी सभाओं का संयोजक और निर्देशक है।"

जनता का प्रतिनिधि—प्रधान मन्त्री जनता का वास्तविक प्रतिनिधि बनता है। सम्पूर्ण देश की जनता उसकी तरफ आशा, विश्वास एवं धैर्य से देखती है कि वह देश के कल्याणार्थ क्या करता है। इसी में वास्तविक जनमत प्रतिबिम्बित होता है। जनता का प्रतिनिधित्व विजयी दल करता है और विजयी दल का प्रतिनिधित्व प्रधान मन्त्री करता है। इसीलिये इसी के ऊपर जनता की आस्था, देश का भविष्य तथा सुदृढ़ता एवं सुरक्षा निहित है।

सम्राट का प्रमुख व्यक्ति—सम्राट के प्रमुख व्यक्तियों में इसकी गणना की जाती है। मन्त्रि-परिषद् तथा सम्राट के सम्बन्धों को यही जोड़ता है। विभागों के मन्त्रियों का सन्देश प्रधान मन्त्री ही सम्राट तक पहुँचाता है, सम्राट को मन्त्रि-परिषद के निश्चय, लोक सभा के निर्णय, मन्त्रियों का प्रशासन तथा सरकार की नीति का ज्ञान एवं उसकी सूचना यही दिया करता है। सम्राट अपने विचारों तथा अनुभवों को प्रधान मन्त्री द्वारा ही व्यक्त करता है।

सरकार का प्रवक्ता—प्रधान मन्त्री सरकार का प्रमुख प्रवक्ता होता है। वही सरकार के उत्तरदायित्वों तथा नीतियों पर अधिकृत रूप से प्रकाश डालता है, आदेशों तथा विधियों की घोषणा भ यही करता है। सभी अधिकारी तथा सम्पूर्ण राष्ट्र उसके वक्तव्य की तरफ ध्यान लगाये रहते हैं। पदारूढ़ सरकार के सभी निश्चयों का एकमात्र प्रवक्ता तथा निर्णयकर्ता प्रधान मन्त्री ही होता है।

निष्कर्ष—प्रधान मन्त्री के उपर्युक्त कार्यों से उसकी स्थिति का कुछ परिचय मिल जाता है। वास्तव में इंगलैण्ड की राज-व्यवस्था में प्रधान मन्त्री का पद अत्यंत महत्व का है। उसकी इसी महत्ता को देखते हुए **जान मेरियट** ने उसके विषय में कहा है कि "प्रधान मन्त्री देश का राजनैतिक शासक (Political Ruler) है।" **राम्जे म्योर** के अनुसार "मन्त्रिमण्डल राज्य रूपी जहाज का यन्त्र है और प्रधान मन्त्री उस यन्त्र का संचालक है"—

"The Cabinet is the, steering wheel of the ship of the State and the Prime Minister is its steerman."

डा० फाइनर ने उसकी स्थिति का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि "**प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष, संसद का नेता, सामान्य नीति से सम्बन्धित विषयों पर सम्राट से विचार विनिमय की प्रमुख कड़ी, देश में दल का सर्वमान्य नेता तथा सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का जीवन्त रूप है।**"

अध्याय | ६

लार्ड सभा

प्रश्न १०—लार्ड सभा के संगठन तथा कार्यों की विवेचना कीजिये।

परिचय—लार्ड सभा ब्रिटेन की व्यवस्थापिका का द्वितीय सदन है। विश्व की वर्तमान विधान सभाओं में लार्ड सभा सर्वाधिक प्राचीन है। यदि हम इसके इतिहास पर एक दृष्टि डालें तो देखेंगे कि इसका जन्म ऐंग्लो-सेक्सन काल में हुआ था। नार्मन्स की विराट-परिषद् इसकी पूर्ववर्ती थी। प्रारम्भिक युग की लार्ड सभा

के अन्तर्गत लोक सभा का भी अस्तित्व विद्यमान था। शनैः-शनैः १४वीं शताब्दी के अन्तर्गत लोक सभा का निर्माण पृथक् रूप से हो गया। किन्तु लार्ड सभा के अधिकार तथा कार्य पूर्ववत् ही रहे। लोक सभा पूर्ण रीति से इस सभा का अनुगमन किया करती थी। कुछ समय बाद प्रजातन्त्र की भावना अधिक बलवती हो गई तथा लोक सभा की अधिकार शक्ति भी उसी के साथ बढ़ चली। इससे लार्ड सभा के अनेक मौलिक अधिकार समाप्त कर दिये गये। वित्त सम्बन्धी अधिकार तो पूर्णतया छीन लिये गये। वर्तमान युग में यद्यपि ब्रिटिश लोक सभा की सम्प्रभुता अपरिहार्य है किन्तु इस सभा का भी प्रभाव कुछ कम नहीं है। लार्ड सभा की प्रतिष्ठा उसके सदस्यों की योग्यता एवं राजनीति-कुशलता के फलस्वरूप अक्षुण्ण है। वाद-विवाद का स्तर इतना उच्च होता है कि देश-विदेश के लोग भी उसको सुनते हैं। इस प्रकार इसके महत्व को गौण नहीं कहा जा सकता। ब्रिटिश लार्ड सभा के अधिकार तथा कार्यों का विवेचन करने के पूर्व लार्डों तथा उनकी सभा के संगठन पर भी प्रकाश डालना होगा।

लार्ड सभा का संगठन —आकार की दृष्टि से लार्ड सभा एक अत्यन्त विशाल उच्च सदन है। संख्या की दृष्टि से यदि इसे संसार का सबसे बड़ा उच्च सदन कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसके सदस्यों की संख्या आजकल १,१०० से ऊपर है। वर्तमान समय में लार्ड सभा में निम्नलिखित प्रकार के लार्ड होते हैं :—

(१) **वंशानुगत लार्ड**—इनकी संख्या ८६५ है। लार्ड सभा का अधिकांश इन्हीं लार्डों का है। इन वंशानुगत लार्डों में निम्नांकित कोटि के लार्ड होते हैं :—

(क) राजशाही ड्यूक (Royal Dukes)	—	३
(ख) अन्य ड्यूक (Dukes)	—	२५
(ग) मार्क्विस (Marquesses)	—	३०
(घ) अर्ल और काउण्टेस (Earls and Countesses)	—	१६१
(च) बैरन और बैरोनेस (Baron and Baronesses)	—	५२०
(छ) विस्काउण्ट और वाइकाउन्टेस (Viscount and Viscountess)	—	१०७

(२) **धार्मिक लार्ड** (Spiritual Lords)—इसके अन्तर्गत दो आर्कबिशप तथा २४ बिशप होते हैं।

(३) **कानूनी लार्ड**—इसके अन्तर्गत १८७६ ई० के अपीलेट ज्यूरिस्डिक्सन (Appellate Jurisdiction Act) के अनुसार कानून में निष्णात लार्ड होते हैं। इनकी संख्या १८ है।

(४) **आजीवन लार्ड**—१९५८ ई० के लाइफ पीरेज ऐक्ट के अनुसार जीवन भर के लिए चुने जाने वाले लार्ड आते हैं। इसमें ५२० लार्ड हैं जिनमें ५० महिलाएँ भी हैं।

इसके अतिरिक्त पहले आयरलैण्ड के भी लार्ड हुआ करते थे परन्तु आयरलैंड

के लार्डों का अब कोई प्रतिनिधि नहीं है। उनका अन्तिम प्रतिनिधि १९६१ ई० में मर गया। १९२२ ई० में आयरिश फ्री स्टेट की स्थापना हो गई और तब से फिर आयरलैंड के नये लार्डों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही समाप्त हो गया।

लार्ड सभा के अधिकारी—लोक सभा की भाँति इस सभा का भी सङ्गठन होता है। इसके अपने अधिकारी तथा समितियाँ होती हैं। लार्ड सभा की अध्यक्षता का भार लार्ड चान्सलर को सौंपा जाता है। यही सभा का सभापतित्व किया करता है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस लार्ड चान्सलर को कैबिनेट में भी सदस्यता प्रदान की जाती है। लोक सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) की तरह उसको अनुशासन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं होते। उसके साथ ही यह किसी भी विधेयक में निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकारी नहीं होता है। यदि यह लार्ड होता है तो अपना एक मत दे सकता है। लोक सभा का अध्यक्ष निष्पक्ष व्यक्ति होता है किन्तु लार्ड सभा का चान्सलर अपने दल से सम्बन्धित होता है। अतः वह अपने दल के ही पक्ष में मतदान किया करता है। लार्ड सभा के सत्र भी चला करते हैं। इसकी बैठकें मंगल, बुध तथा वृहस्पतिवार को होती हैं। कभी-कभी सोमवार को भी हो जाया करती हैं किन्तु शुक्रवार को लार्ड सभा की बैठक कभी नहीं हो सकती। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस सभा की कार्यवाही बहुत लम्बी नहीं होती है। किन्तु इसके वाद-विवाद बहुत लम्बे होते हैं। वाद-विवाद में भाग लेने वाले सदस्यों के बोलने की पूरी छूट रहती है। इसके साथ ही उनके भाषणों पर लोक सभा की भाँति सम्पुट नहीं लगाया जा सकता है। लार्ड लोग अपने भाषणों के आरम्भ में अध्यक्ष को सम्बोधित नहीं करते हैं। वे लार्डों को (My Lord) कहकर सम्बोधित करते हैं। यद्यपि यहाँ पर वाद-विवाद के नियम बड़े ही उदार हैं किन्तु वाद-विवाद का स्तर बड़ा ही उच्च होता है। प्रश्न पूछने की प्रथा यहाँ व्यवस्थित नहीं की गई है।

लार्ड सभा के कार्य एवं अधिकार

'हाउस् ऑफ कामन्स' के पूर्व लार्ड सभा ही वास्तविक विधि-निर्माण सभा थी। लोक सभा के निर्माण से इसके कार्यों में कमी आ गई। परन्तु दो सभाओं को विधि-निर्माण का अधिकार मिलने से परस्पर संघर्ष होना प्रारम्भ हो गया था। फलतः लोक सभा ने लार्ड सभा के अनेक विधायक अधिकारों को समाप्त कर दिया। परन्तु अभी भी लार्ड सभा को अनेक कार्य तथा अधिकार उपलब्ध हैं। उन सभी कार्यों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

१—न्याय सम्बन्धी अधिकार—ग्रेट ब्रिटेन में लार्ड सभा ही सर्वोच्च न्यायालय है। किसी केस के लिए अन्तिम निर्णय लार्ड सभा ही करती है। लार्ड सभा को पहले सभी प्रकार की न्याय शक्तियाँ उपलब्ध थीं। किन्तु समय के प्रवाह

से तथा प्रजातंत्रात्मक भावनाओं की अभिवृद्धि से लार्ड सभा की कुछ शक्तियाँ समाप्त हो गई हैं।

किन्तु सर्वोच्च न्यायालय के लिए लार्ड सभा ही एकत्र होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लार्ड सभा के सभी सदस्यों को न्याय के लिए बैठने का अधिकार नहीं है। केवल 'लॉ लार्ड्स' ही न्याय के लिए एकत्र होते हैं। ल लार्ड्स के विषय में लिखा जा चुका है। अतः अब उनका पुनः वर्णन समुचित नहीं है। किन्तु लॉ लार्डों द्वारा किये गये निर्णयों को कोई भी परिवर्तित नहीं कर सकता। केवल संसद ही नवीन कानून बनाकर अथवा संविधान में संशोधन करके ही उक्त निर्णय को असफल कर सकती है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए लार्ड सभा के न्याय-अधिकारों को के दो भागों में बाँटा जाता है—१. प्रारम्भिक अधिकार, २. पुनर्विचार अधिकार।

(१) प्रारम्भिक (Original) अधिकार— पहले लार्डों पर किसी भी अपराध के लिए सामान्य न्यायालयों में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। लार्ड सभा ही अपने सदस्यों के अभियोगों का निर्णय करती थी किन्तु यह अधिकार कुछ समय बाद समाप्त हो गया। प्रजातंत्रात्मक भावनाओं के बढ़ने से लार्डों ने अपने अभियोगों का निर्णय सामान्य न्यायालयों में ही कराना अधिक श्रेयस्कर समझा। इसके साथ ही १९४२ ई० में इस अधिकार को कानून बनाकर समाप्त कर दिया गया।

इस प्रकार लार्ड सभा को लोक सभा के सदस्य, उच्च कर्मचारी अथवा पदाधिकारी वर्ग पर लगाये गये महाभियोग पर भी विचार करने का महत्त्वपूर्ण अधिकार उपलब्ध था किन्तु महाभियोग लगाने की प्रथा ही शनैः-शनैः शिथिल पड़ गई। अतः उन्नीसवीं शताब्दी में इस प्रथा का समापन पूर्ण रीति से हो गया। अतएव लार्ड सभा का यह महत्त्वपूर्ण अधिकार भी समाप्त हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यावहारिक रूप से आज लार्ड सभा के पास प्रारम्भिक न्याय विषयक अधिकार नहीं रह गये हैं।

(२) पुनर्विचार सम्बन्धी अधिकार—पहले ही यह कहा जा चुका है कि ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैण्ड के लिए लार्ड सभा सर्वोच्च न्यायालय है इसमें सभी प्रकार के मुकदमों पर विचार किया जा सकता है। चाहे वे व्यावहारिक हो अथवा दाण्डिक। पुनर्विचार सम्बन्धी अधिकारों का सम्पादन करने के लिए नौ लॉ लार्ड (Law Lords) बैठते हैं, परन्तु व्यवहार में यही कहा जाता है कि लार्ड सभा ने इस पर विचार किया तथा निर्णय दिया। शेष अन्य लार्डों को इस प्रक्रिया में भाग लेने का कोई भी अधिकार नहीं है। यह अभिसमयात्मक नियम प्रचलित है। यह भी

बतलाया जा चुका है कि इस सभा के निर्णय अपरिवर्तनीय हैं, केवल संसद ही नूतन विधि निर्माण करके इसके निर्णयों को अमान्य घोषित कर सकती है।

विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार

पहले ही इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा चुका है कि लार्ड सभा इंगलैंड का द्वितीय सदन है। अतः लोक सभा की भाँति इसको भी विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार उपलब्ध है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि लार्ड सभा विधि-निर्माण के क्षेत्र में केवल नाममात्र का ही अधिकार रखती है। इसके अधिकारों की वास्तविक सत्ता 'हाउस आफ कामन्स' में पहुँच चुकी है। अर्थ-विधेयक एवं व्यय-विनियोग में लार्ड सभा के सभी अधिकार समाप्त कर दिये गये हैं। इस भावना का उदय १८३२ ई० में सुधारों के परिणाम स्वरूप प्रारम्भ हुआ था। १८३२ में विधि-निर्माण सम्बन्धी सभी कार्यों का सम्पादन लाक सभा ही किया करती थी। लार्ड सभा तो केवल एक निष्क्रिय पर्यवेक्षक की भाँति कार्यरत रहती थी। लार्डों का वैयक्तिक प्रभाव कामन्स सभा पर बहुत था क्योंकि लार्ड लोग बड़े-बडे भूमिधर थे। अतः उनका प्रभाव होना सर्वमान्य हो था। इसके अतिरिक्त अधिकांश सदस्य लार्डों के परिवारों के होते थे अथवा लार्डों की प्रभावशीलता के कारण ही निर्वाचित होकर आते थे। इसलिए कामन्स सभा लार्ड सभा के प्रभाव से मुक्त न थी और इसी के परिणामस्वरूप विधि-निर्माण के क्षेत्र में लार्डों की ही भावना प्रच्छन्न रूप से कार्य किया करती थी। किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के साथ यह एकाधिकार भी पलट गया। १८३२ में निर्वाचन-क्षेत्रों का पुनर्नियोजन किया गया। इस पुनर्नियोजन में व्यापारी एवं सामान्य जनों को भी राजनीति मे सक्रिय भाग लेने का अमूल्य अवसर मिला। फलतः मतदाताओं की संख्या बढ़ गई। इससे भूमिपतियों की प्रतिष्ठा व सत्ता पर आघात लगा। उनकी प्रभाव-परिधि सङ्कुचित हो गई। केवल यही नहीं १८६७ तथा १८८४ के सुधारों में लोक सभा ने वास्तविक प्रजातन्त्र का परिधान धारण कर लिया। किन्तु इसके विपरीत लार्ड सभा का वही पुरातन स्वरूप बना रहा। लार्ड सभा की विचारधारा अनुदार ही बनी रही। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्योगपतियों ने भी पुराने भूमिधर लार्डों की मनोवृत्ति को सम्बल दिया। यही कारण है कि आयरलैन्ड की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन का उदार दल दो भागों में विभक्त हो गया था। इसका एक भाग अनुदार मनोवृत्ति वालों से जा मिला था। फलतः लार्ड सभा के अधिकांश सदस्य अनुदार मनोवृत्ति के होने के कारण उदार दल की सभी योजनाओं का प्रबल

विरोध किया करते थे। १८९२-९५ में यह विरोध अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचा। इसी काल में उदार दल की सरकार ने आयरलैन्ड की आन्तरिक स्वतंत्रता के लिये 'होम रूल बिल' पारित किया परन्तु लार्ड सभा ने अपनी अस्वीकृति देकर इसे अमान्य घोषित कर दिया। इसी समय से लार्ड सभा के अन्त का श्रीगणेश हो गया।

जब उदार दल सत्तारूढ़ था, तभी उसने लार्ड सभा के सुधार की रूपरेखा प्रस्तुत की थी किन्तु इसके बाद ही उसका बहुमत समाप्त हो गया। अतः यह कार्य १० वर्षों तक स्थगित रहा। परन्तु १९०५ में उदार दल बहुमत से विजयी होकर पुनः सत्तारूढ़ हो गया। इसलिए पुराने संघर्ष तथा विरोध की सारी भावनाएँ उभर आईं। १९०९ ई० में लार्ड सभा ने लोक सभा द्वारा पारित अनेक विधेयकों में अभिलिखित संशोधन एवं परिवर्तन कर डाले। इसके साथ लायड द्वारा भूमि-मूल्य कर लगाने की योजना क्रियान्वित करने का प्रयास किया गया किन्तु लार्ड सभा ने इस योजना को अस्वीकृत कर दिया। इसका प्रधान कारण यह भी था कि भूमिपति लार्डों के स्वार्थों पर इससे आघात पहुँचता था। इसलिए लार्ड सभा ने इसको अस्वीकार करके लोक सभा के साथ अपने विरोधों को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अर्थ-विधेयक तथा व्यय-विनियोग सम्बन्धी सभी विधियों को प्रस्तुत, पारित एवं क्रियान्वित करने का अधिकार एकमात्र लोक सभा को ही था। फलतः लोक सभा में सत्तारूढ़ दल ने लार्डों के अधिकारों को आमूल परिवर्तित करने का प्रस्ताव १९१० ई० में प्रस्तुत किया। यद्यपि यह विधेयक लोक सभा में पारित कर दिया गया किन्तु लार्ड सभा इसको कभी भी विधि के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती थी। अतः तत्कालीन मन्त्रि मंडल ने सम्राट् जार्ज पंचम से उक्त विधेयक को पारित करने के लिए अतिरिक्त लार्डों को बनाने की माँग की। इससे लार्डों का विरोध कमजोर पड़ जाता तथा विधेयक पारित हो जाता। परन्तु सम्राट ने लोकमत की परीक्षा के लिए साधारण निर्वाचन का प्रस्ताव रखा। फलतः इस साधारण निर्वाचन में उदार दल को विजयश्री मिली। अतः उक्त विधेयक को लोक सभा के प्रबल विरोध के कारण लार्ड सभा ने भी स्वीकार कर लिया। इस विधेयक ने १९११ के पार्लियामेन्ट एक्ट का रूप धारण कर लिया। इस पार्लियामेन्ट एक्ट में कई महत्वपूर्ण धाराओं का उल्लेख किया गया है। उन विभिन्न धाराओं द्वारा लार्ड सभा अपने अतीत की छाया मात्र रह गई है। उसकी वास्तविक सत्ता प्रजातंत्र के सशक्त हाथों में सिमट गई है। पार्लियामेन्ट एक्ट १९११ ई० की महत्वपूर्ण धाराएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) **अर्थ विधेयक सम्बन्धी धारा**—अर्थ सम्बन्धी समस्त विधेयक लोक सभा द्वारा ही प्रस्तुत एवं पारित किये जाते हैं। लार्ड सभा अर्थ विधेयकों को चाहे

अस्वीकार करे अथवा पारित करे, इसका परिणाम एक ही होगा। एक मास की अवधि तक लार्ड सभा उस पर विचार कर सकती है। यदि एक मास में उसने विधेयक को पारित नहीं किया, तो वह सम्राट के पास स्वीकृति के लिए भेज दिया जायेगा। इस प्रकार सम्राट की स्वीकृति पाकर उक्त विधेयक कानून बन जायेगा। अर्थ विधेयकों की परिभाषाओं का भी स्पष्टीकरण कर दिया गया है, तथापि शंका उत्पन्न होने पर लोक सभा के अध्यक्ष (Speakar) की व्याख्या एवं निर्णय को मान्यता प्रदान की गई।

(२) **सामान्य विधेयक सम्बन्धी धारा**—अर्थ विधेयक सम्बन्धी विधियों को पास करने का महत्वपूर्ण अधिकार लार्ड सभा के हाथों से निकल गया। किन्तु इसके साथ ही सामान्य विधेयकों पर भी कतिपय प्रतिबन्धों के साथ लार्ड सभा का सामान्य अधिकार बना रहा। लोक सभा किसी सामान्य विधेयक को पारित कर दे, तो लार्ड सभा उसे अस्वीकृत करके कम से कम दो वर्ष के लिए रोक सकती थी। लोक सभा उस विधेयक को लार्ड सभा की अस्वीकृति होने पर भी कुछ प्रतिबन्धों के साथ पारित कर सकती थी। दो वर्ष की अवधि में ३ सत्रों के द्वारा यदि लोक सभा किसी विधेयक को पारित कर लेती थी, तो वह सम्राट की स्वीकृति के लिए भेजा जा सकता था। इस बार सम्राट की स्वीकृति से उक्त विधेयक कानून का रूप धारण कर सकता था। लार्ड सभा चाहे तीनों बार क्यों न उसे अस्वीकृत कर दे किन्तु अन्तिम बार उस विधेयक को कानून बनने से कोई रोक नहीं सकता था। लार्ड सभा केवल दो वर्ष के लिए किसी भी सामान्य विधेयक को रोक सकती थी। इस प्रकार लोक सभा ने यद्यपि लार्ड सभा के अधिकारों को समाप्त-सा कर दिया था किन्तु उसे सामान्य विधेयक को पारित करने के लिए २ वर्ष तक संघर्ष करना पड़ता था। यदि बीच में लोक सभा का विघटन अथवा अवधि-समापन हो जाता, तो उक्त विधेयक पारित होने से रह जाता था।

(३) **लोक सभा की अवधि**—सन् १९११ ई० के पहले लोक सभा की अवधि ७ वर्ष की थी। किन्तु लार्ड सभा पर जनमत का प्रभाव एवं प्रजातंत्रात्मक भावों की छाप डालने के लिए लोक सभा की अवधि ५ वर्ष तक सीमित की गई। इससे लार्ड सभा पर जनता का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने लगा और उसकी अधिकार-परता ~~को पर्याप्त~~ आघात लगा।

उपर्युक्त तथ्यों से पार्लियामेंट एक्ट १९११ ई० की मुख्य धाराओं पर प्रकाश पड़ जाता है। इसी एक्ट द्वारा लार्ड सभा की अधिकार-परता का नियमन किया गया, व्यय-विनियोग एवं अर्थ सम्बन्धी समस्त विधेयकों पर से लार्ड सभा का अधिकार समाप्त हो गया। इसके साथ ही सामान्य विधेयकों को पारित करने की दिशा में भी लोक सभा के अधिकारों में वृद्धि हो गई। किन्तु लार्ड सभा साधारण विधेयकों को

२ वर्ष तक कानून बनने से रोक सकती थी। बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों में २ वर्षों का समय बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। अतः इस समस्या का समाधान १६४६ ई० के एक नये पार्लियामेण्ट एक्ट के द्वारा किया गया। इसमें किसी भी विधेयक के अस्वीकृत होने पर यदि लोक सभा उसी को एक वर्ष के अन्तर्गत दो सत्रों में ही पारित कर दे, तो वह विधेयक कानून का रूप ग्रहण कर सकेगा। इस एक्ट द्वारा लार्ड सभा के सभी विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार उल्लघनीय हो गये। लोक सभा किसी भी विधेयक को कानून का रूप दे सकती है। लार्ड सभा अब केवल उस विधेयक को १ वर्ष के लिए ही रोक सकती है। इस प्रकार लोक सभा तथा लार्ड सभा के विरोध का समापन १६४६ ई० के एक्ट द्वारा किया गया है। अब लार्ड सभा अपने अतीत की केवल छायामात्र रह गई है।

लार्ड सभा के विरुद्ध तर्क

अपनी संरचना, कार्य-पद्धति तथा अन्य दृष्टियों से लार्ड सभा आलोचकों की आलोचना का लक्ष्य बनती रही है। अनेक विद्वानों और राज्य-विज्ञों ने अनेक आधारों पर उसकी आलोचना की है। प्रो० लास्की ने अरक्षणीय असंगति (Indefensible Anachronism) की संज्ञा दी है। मेश्योत ने इसे अत्यधिक गरिमायुक्त काल व्यतिक्रम कहा है। आलोचना के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं :—

(१) आलोचना का प्रथम आधार लार्ड सभा की रचना से सम्बन्ध रखता है। रचना की दृष्टि से लार्ड सभा प्रतिक्रियावादी तथा पूंजीवादी तत्वों का गढ़ है। इसके ६०% व्यक्ति वंशानुगत लार्ड हैं, जैसा कि डा० फाइनर ने कहा है—"अपनी रंगीन और कीमती पोशाकों के अन्दर पियरो का एक बहुत बड़ा आर्थिक स्वार्थ निहित रहता है, उनमें एक-तिहाई तो बडे-बडे उद्योगों के निर्देशक हैं तथा एक-तिहाई बड़ी-बड़ी जमींदारियों के स्वामी हैं। उनमें से अधिकांश का अनुदार संसद सदस्यों के साथ पारिवारिक और औद्योगिक सम्बन्ध है।"

जेम्स हार्वे और कैथरिन हुड ने भी कहा है कि "लार्ड सभा में आधुनिक काल में कामन्स सभा की अपेक्षा एक अत्यधिक ठोस और सुदृढ़ सम्मेलन का प्रतिनिधित्व दिखलाई पड़ता है।" इस प्रकार सभा का पहला दोष यह है कि वह निहित स्वार्थों का केन्द्र है" या राम्जे म्योर के शब्दों में "वह धनिकों का सामान्य दुर्ग (Common Fortress of Wealth) है।"

(२) लार्ड सभा की आलोचना का दूसरा आधार उसकी कार्य-प्रक्रिया से सम्बन्ध रखता है। लार्ड सभा के सदस्य सदन की कार्यवाहियों में बहुत कम अभिरुचि

लेते हैं। सदन की उपस्थिति बहुत कम रहती है। इससे भी सदन की अनुपयोगिता सिद्ध हो जाती है।

(३) लार्ड सभा के विषय में कहा जाता है कि यह व्यर्थ का दीर्घकारी सदन है, विशेषकर किसी भी प्रगतिशील विधेयक के मार्ग में यह बाधक बन कर खड़ी हो जाती है।

(४) आलोचकों का कहना है कि लार्ड सभा के हाथों में कोई राजनैतिक शक्ति नहीं है तो उसकी उपयोगिता का भी महत्व नहीं रह जाता। जैसे उब्बे सिये ने कहा है, "द्वितीय सदन की क्या आवश्यकता है, यदि प्रथम सदन के साथ सहमत है तो निरर्थक है, और यदि वह विरुद्ध है तो केवल शैतानी कर सकता है।"

(५) लार्ड सभा के विरुद्ध अन्य तर्क यह दिया जाता है कि लार्ड सभा निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं करती। जैसा कि १८८१ ई० में लार्ड एक्टन ने ग्लेडस्टन की पुत्री को लिखा था कि "एक महत्वपूर्ण कथन के अनुसार, ऐसी संस्था को न तो प्रतिरोध की क्षमता है और न वह प्रतिरक्षा का ही साधन है। इसके समस्त कार्यों में स्वार्थ के सिद्धान्त का प्रभाव है। असंख्य अज्ञानी, गन्दे और लालची लोगों की अपेक्षा इसने अपने बड़े पुत्रों के प्रति अपने कर्त्तव्य का अधिक प्रदर्शन किया है।......इसने हमेशा गलत काम किया है—कभी भेद-भाव, भय और गलत मूल्यांकन के कारण तो कभी स्वभाववश और आत्मरक्षा के कारण।"

लार्ड सभा के सुधार की योजनाएँ

लार्ड सभा के उपर्युक्त दोषों से परिचित इंगलैण्ड के लोकनायकों ने समय-समय पर उसके सुधार की माँग की है।

इसका संगठन प्रजातांत्रिक प्रणाली से होना चाहिए। ऐसा विचार अनेक विधि-मनीषियों ने समय-समय पर व्यक्त किया है। राजशास्त्र के सुप्रसिद्ध विचारक प्रो० लास्की का कथन है कि "एक प्रजातांत्रिक संस्था जनतन्त्रात्मक समाज में तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि वह संस्था अपने सभी क्रिया-कलापों का संगठन प्रजातन्त्र के अनुकूल नहीं करती है।" इस प्रकार हाउस ऑफ लार्ड्स का संगठन तथा उसके अधिकारों का संवर्द्धन पुनः होना चाहिए। इसके संगठन के पीछे कई तथ्य उभर आते हैं। उनका पुनर्नियोजन होना आवश्यक है। विधि-मनीषियों ने निम्नलिखित कारणों को व्यक्त किया है:—

आकार की वृद्धि—विश्व के सभी प्रजातांत्रिक देशों के द्वितीय सदन से यह

आकार में पर्याप्त बड़ा है। इसके सदस्यों को अधिकारीगण पहिचान नहीं पाते हैं। इसलिए कार्यों में अव्यवस्था का होना स्वाभाविक ही है। प्रति वर्ष इसका आकार बढ़ता ही जा रहा है।

पैतृक अधिकार—लार्ड सभा के अधिकांश सदस्य पैतृक अधिकारों द्वारा प्राप्त लार्ड उपाधि का उपभोग करते हैं। यही कारण है कि बहुत से अयोग्य सदस्य भी इस सभा में सम्मिलित रहते हैं। इसलिए लार्ड लोग सभा के अधिवेशनों में सम्मिलित नहीं होते हैं। यद्यपि कतिपय लार्ड प्रतिभावान तथा बहुत ही योग्य होते हैं परन्तु सब ऐसे नहीं होते हैं।

अनुदार सदस्यों का बाहुल्य—लार्ड सभा के अधिकांश सदस्य सम्पत्तिवान तथा भूमिपति हैं। फलतः उनकी विचारधारा भी अनुदार है। इस अनुदारता के कारण लार्ड लोग लोक सभा के प्रगतिशील कार्यों का निरन्तर विरोध किया करते हैं। यही कारण है कि लोक सभा को अनेक कार्यों में बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

उपर्युक्त कठिनाइयों को ध्यान में रखकर लार्ड सभा के सुधार करने की अनेक योजनाएँ बनाई गईं। किन्तु किसी भी योजना को साकार रूप न मिल सका और न कोई योजना इतनी ठीक ही उतरी जिसको शीघ्र ही अपना लिया जाता। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए कतिपय प्रमुख योजनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

ब्राइस रिपोर्ट—सन् १६११ ई० के ऐक्ट द्वारा लार्ड सभा के अधिकारों का नियमन कर दिया गया था। परन्तु उसकी पारस्परिक संगठन-प्रणाली की तरफ कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। फलतः इस कार्य का सम्पादन करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन १६१७ ई० में किया गया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता लार्ड ब्राइस ने की। इस सम्मेलन का प्रतिवेदन (रिपोर्ट) १६१८ ई० में प्रकाशित किया गया। इसमें यह निश्चय किया गया कि लार्ड सभा की सदस्य-संख्या का नियमन किया जाय तथा वह संख्या ३२७ से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस सदस्य-संख्या में २४६ सदस्यों का निर्वाचन लोक सभा के सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए। लोक सभा के सदस्य भी १२ प्रादेशिक भागों का प्रतिनिधित्व करते हुए भौगोलिक दृष्टिकोण से पूर्ण प्रतिनिधित्व का ध्यान रखकर लार्डों का निर्वाचन करेंगे। इसके अतिरिक्त ८१ लार्डों का अप्रत्यक्ष निर्वाचन दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति द्वारा किया जाना चाहिए। इस नव-निर्वाचित सदस्यों की पदावधि १२ वर्ष रखने का सुझाव रक्खा गया। इसके साथ

प्रति चौथे वर्ष एक-तिहाई सदस्यों की पदावधि का समापन तथा निर्वाचन की व्यवस्था प्रचलित करने पर जोर दिया गया ।

इस प्रकार उपर्युक्त बातें लार्ड सभा के सुधार-पक्ष में प्रस्तुत की गईं । लार्ड ब्राइस की रिपोर्ट अनेक राजनीतिज्ञों तथा पुरातन मान्यताओं के साथ समझौते के दृष्टिकोण को लेकर चली थी । फलतः इसको साकार रूप न दिया जा सका । इस रिपोर्ट की अनेक बातों में संशोधन करके एक नवीन स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया गया किन्तु वह भी पूर्ण सफल न हो सका ।

कैबिनेट कमेटी के प्रस्ताव

१६२६ ई० में मन्त्रिमन्डल की एक उपसमिति का संगठन किया गया । इसने लार्ड ब्राइस की रिपोर्ट के अनेक तत्वों को परिवर्तन के साथ एक नूतन सुधार का रूप देने का प्रस्ताव किया । कुछ पुराने तथ्यों को ग्रहण किया गया तथा कतिपय मूलभूत सिद्धान्त जोड़े गये । लार्ड सभा के संगठन में कुछ लार्डों को छोड़कर शेष सभी के निर्वाचन पर जोर दिया गया । इस प्रस्ताव के अनुसार राजवंशी लार्ड, धार्मिक लार्ड, न्यायाधीश लार्ड प्रभृति की परम्परा पूर्ववत् बनाये रखने का प्रयास किया गया । इनके अतिरिक्त निम्नलिखित लार्डों को भी रखने की व्यवस्था पर जोर दिया गया :—

१—बाहर से चुने हुए सदस्यों को लार्ड सभा की सदस्यता प्रदान करने का विधान किया जाय । इन सदस्यों को चाहे प्रत्यक्ष रीति से चुना जाय अथवा अप्रत्यक्ष रीति से, किन्तु निर्वाचन होना आवश्यक माना जाय ।

२—लार्डों द्वारा अपने ही वर्ग में से कुछ सदस्यों को निर्वाचित करने का प्रस्ताव किया गया ।

३—सम्राट द्वारा उपाधि-प्राप्त योग्य लार्डों को भी सम्मिलित करने का विधान बनाया गया ।

उपर्युक्त व्यवस्था के अतिरिक्त लार्डों की संख्या का भी नियमन करने का प्रस्ताव रक्खा गया । इस प्रस्ताव में सदस्य संख्या ३५० निर्धारित करने पर अत्यधिक जोर दिया गया । इन सभी प्रस्तावों में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि लार्ड सभा के अधिकारों में वृद्धि करने का प्रश्न नहीं उठाया गया । १६११ ई० के पार्लियामेन्ट एक्ट के अनुसार ही अधिकारों को बनाये रखने पर सभी प्रस्तावों में सहमति दिखलाई पड़ती

है। इस मन्त्रिमन्डलीय प्रस्ताव के पश्चात् ही सरकार की व्यवस्था में पर्याप्त परिवर्तन हो गये। अतः इसको साकार रूप न मिल सका। इन विभिन्न प्रस्तावों के साथ ही १९४१ ई० के सर्वदलीय सम्मेलन का प्रस्ताव उल्लेखनीय है। वर्तमान समय में संसद के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति को लार्ड सभा के सुधार विषयक अपने सुझाव प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा गया। समिति ने १९६२ ई० दिसम्बर में अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट के अनुसार लार्ड सभा में महत्वपूर्ण सुधार किये गए हैं और भविष्य में और भी क्रान्तिकारी सुधारों की आशा की जा रही है। इस सम्मेलन में कतिपय मौलिक तथ्यों का निरूपण किया गया। उन तथ्यों को निम्न प्रकार से श्रेणीबद्ध कर सकते हैं :—

(१) **पैतृक अधिकार का समापन**—इस सर्वदलीय सम्मेलन में लार्डों के पैतृक अधिकार की समाप्ति पर जोर दिया गया, क्योंकि इससे प्रजातंत्रात्मक अधिकारों का हनन होता है।

(२) **सामाजिक प्रतिष्ठा**—लार्डों की वैयक्तिक योग्यता के आधार पर ही लार्ड सभा का सदस्य न बनाकर उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा तथा लोक-सेवा के फलस्वरूप ही लार्डशिप प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार संसदीय लार्ड बनाकर सुधार व्यवस्था पर जोर दिया गया।

(३) **पदच्युति**—इस सम्मेलन का प्रस्ताव लार्डशिप को आजन्म बनाये रखने के पक्ष में था किन्तु इसके साथ सदस्यों की अयोग्यता पर उनको बहिष्कृत करने की भी बात थी।

(४) **वेतन**—इस सम्मेलन ने लार्डों को वेतन देने की व्यवस्था पर जोर दिया क्योंकि अवैतनिक लार्ड लोग प्रशासन पर अधिक ध्यान नहीं देते। फलतः उन्हें वेतन प्रदान किया जाय तथा उनसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन भी कराया जाय।

(५) **स्त्रियों की सदस्यता**—इस सम्मेलन में नारियों को लार्डशिप प्रदान करने का प्रस्ताव किया गया क्योंकि आज के युग में नारियों को किसी भी क्षेत्र से बहिष्कृत रखना केवल नारियों का ही अपमान नहीं, अपितु प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तों का हनन है। १९५८ ई० में निर्मित एक अधिनियम के अनुसार अब महिलाएँ भी लार्ड बन सकती हैं।

(६) **मताधिकार**—यह बताया जा चुका है कि लार्डों को किसी भी प्रकार के निर्वाचन में मताधिकार प्राप्त नहीं है। अस्तु इस सम्मेलन ने संसदीय लार्डों

के अतिरिक्त अन्य लार्डों के मताधिकार का प्रतिपादन किया । केवल मताधिकार ही नहीं, अपितु निर्वाचन में सदस्यता के हेतु खड़े होने के अधिकार का भी समर्थन किया गया ।

इन उपर्युक्त तथ्यों को सर्वदलीय सम्मेलन में बहुमत से स्वीकार कर लिया गया । किन्तु लार्ड सभा के अधिकारों का प्रश्न हल न किया जा सका । फलतः लार्ड सभा के सुधार विषयक प्रस्ताव केवल कागज तक ही सीमित रह गये । उनको कभी मूर्त रूप प्रदान नहीं किया जा सका । यही कारण है कि लार्ड सभा आज भी अपनी पुरातन परिपाटी पर गतिमान है । उनकी अबाध गति में किसी भी प्रकार का व्याघात उत्पन्न नहीं हो रहा है क्योंकि लोक सभा का विरोध अब लार्ड सभा प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकती है । अतः इसकी वही परिपाटी चल रही है जो पहले था । इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) **अंग्रेजों की रूढ़िप्रियता**—विश्व की सर्वाधिक रूढ़िप्रिय जाति अंग्रेज हैं । वह सरलतापूर्वक अपनी परम्परा में आमूलचूल परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं होते । यही कारण है कि लार्ड सभा के लिए अंग्रेज लोग चिन्तित नहीं हैं । श्री हर्बर्ट मॉरिसन के अनुसार अंग्रेज सहिष्णुतापूर्वक अनेक विधाओं से युक्त विपरीत सभात्मक संगठनों से भी कार्य निकालने लेने में दक्ष हैं । अतः लार्ड सभा को वे अपने मार्ग का बाधक नहीं समझते हैं ।

(२) **लार्ड सभा की शक्ति का ह्रास**—दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि लार्ड सभा की वैधानिक शक्ति का पूर्ण ह्रास हो चुका है । वह अब लोक सभा द्वारा पारित किसी भी विधेयक को अस्वीकृत करके विधि बनाने से रोक नहीं सकती है । विश्व में सबसे शक्तिहीन द्वितीय सदन लार्ड सभा ही कही जा सकती है । यद्यपि किसी भी विधेयक की पूर्ण आलोचना करने में यह सभा स्वतन्त्र है किन्तु ऐसी आलोचनाओं से सरकार के पदत्याग की आशंका नहीं रहती है । फलतः लोक सभा में सत्तारूढ़ सरकारें इनकी उपेक्षा किया करती हैं ।

(३) **शक्तिपरता का भय**—इंगलैण्ड की सरकार लार्ड सभा में सुधार इसलिए नहीं करना चाहती कि उसमें सुधार करने पर कुछ न कुछ अधिकार देने पड़ेंगे । अधिकार-प्राप्ति से लोक सभा तथा लार्ड सभा में विरोध होना स्वाभाविक है । जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सीनेट विश्व का सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न द्वितीय सदन माना जाता है फलतः इंगलैण्ड में सीनेट जैसी संस्था के अधिकार लार्ड सभा को प्रदान करने में सभी लोग सशंकित रहते हैं । इसलिए लार्ड सभा में किसी भी प्रकार के संशोधन, परिवर्तन करने में सभी सरकारें अपनी हानि समझती हैं । यही कारण है कि आज तक लार्ड सभा में कोई भी मौलिक सुधार नहीं किया जा सका है ।

लार्ड सभा की उपयोगिता—उपर्युक्त उल्लेखों से लार्ड सभा में सुधार न करने के कारणों का परिचय मिल जाता है। परन्तु फिर भी यह प्रश्न उठता है कि ऐसे अनुपयोगी निकाय को समाप्त ही क्यों नहीं कर दिया जाता है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि लार्ड सभा का संगठन यद्यपि अप्रजातांत्रिक है परन्तु इसको अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता है। इसकी उपयोगिता पर लार्ड ब्राइस की रिपोर्ट में पूर्ण विचार किया गया है। इसकी उपयोगिताए निम्नलिखित हैं :—

(१) **संशोधन**—लार्ड सभा की महत्वपूर्ण उपयोगिता संशोधन में है। लोक सभा के पास कार्यों की बहुलता, विवाद-परता एवं समय की कमी है। अतः वहाँ पारित विधेयकों में अशुद्धियों का होना स्वाभाविक है। लार्ड सभा उन सभी विधेयकों की मीमांसा करती है। उनकी अशुद्धियों का, शोधों एवं भूलों का परिमार्जन करती है, क्योंकि लार्ड सभा के पास समय की अधिकता है। अतएव वहाँ विवादों द्वारा विधेयकों की मीमांसा करने की पूरी स्वतन्त्रता है। अतएव इस क्षेत्र में लार्ड सभा की अपनी विशेषता है।

(२) **व्यक्तिगत विधेयकों का पारण**—बहुधा व्यक्तिगत विधेयक लार्ड सभा में ही प्रस्तुत कर दिये जाते हैं क्योंकि विवादास्पद विधेयकों पर लोक सभा ही विचार कर सकती है। अतः विवादहीन विधेयक लार्ड सभा द्वारा प्रस्तुत एवं पारित कर दिये जाते हैं। लोक सभा उन विधेयकों को जैसे का तैसा पारित कर देती है। इस प्रकार लार्ड सभा लोक सभा का बहुमूल्य समय बचा लेती है तथा उसके कार्यभार को कुछ हल्का कर देती है।

(३) **जनता का सजग प्रहरी**—लार्ड सभा किसी भी विधेयक को अब कानून बनने से नहीं रोक सकती है। किन्तु उस पर अपना मतभेद आलोचनाओं द्वारा प्रकट करके उक्त विधेयक को एक वर्ष के लिए रोक सकती है। परिणामतः देश की सम्पूर्ण जनता सजग हो जाती है तथा उसका मत भी विधेयक के पक्ष या विपक्ष में सामने आ जाता है। इसके कारण ही लोक सभा किसी कार्य को गुप्त रूप से नहीं कर सकती। यह लार्ड सभा की सबसे बड़ी उपयोगिता कही जा सकती है।

(४) **उत्कृष्ट आलोचनाएँ**—लार्ड सभा में बहुत उच्च योग्यता, प्रतिभा एवं विद्वता से सम्पन्न सदस्य होते हैं। अतः इसके वाद-विवाद का स्तर बहुत ही उच्च होता है। लार्ड सभा के पास समय की अधिकता रहती है तथा लार्डों के भाषण में सम्पुट का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि प्रत्येक विधेयक के सभी

उपादानों की मीमांसा बड़ी उच्चकोटि की होती है। इसके साथ ही इनकी आलोचनाओं से सरकार को कोई भी भय नहीं रहता है।

उपर्युक्त विविध उपयोगिताओं के परिणामस्वरूप लार्ड सभा का अस्तित्व सदा ही बना रहेगा। इसकी उपादेयता ने इसे अमर बनाया है यद्यपि इसका संगठन अप्रजातांत्रिक है। इसकी उपयोगिताएँ किसी भी प्रजातांत्रिक निकाय से कम नहीं हैं।

अध्याय | ७ House of Commo

लोक सभा

प्रश्न—लोक सभा का आन्तरिक संगठन—अध्यक्ष, उपाध्यक्ष आदि, कामन्स सभा के आन्तरिक संगठन एवं कार्यों की विवेचना कीजिये।

अथवा

स्पीकर का निर्वाचन किस प्रकार होता है? उसके कार्य तथा अधिकारों पर प्रकाश डालिये।

परिचय—प्रजातंत्र की आधारशिला है पार्लियामेण्ट। पार्लियामेण्ट में दो सदनों का विधान सर्वत्र प्रचलित है। इस द्विसदनात्मक संसद पद्धति के समारम्भ का श्रेय ग्रेट ब्रिटेन की लोक सभा को ही दिया जा सकता है। वस्तुतः यहाँ की लोक सभा ने विश्व का मार्ग-दर्शन किया है। सम्पूर्ण संसार ने लोक सभा का ही अनुसरण किया है। लार्ड सभा का अनुसरण नहीं किया गया है। यदि ध्यानपूर्वक विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रेट ब्रिटेन की लोक सभा ही वास्तविक संसद है। सम्पूर्ण शक्तियों का स्रोत अब इसी सभा में निहित है। प्रशासन से लेकर विधान-निर्माण, संशोधन एवं परिवर्द्धन तक के मौलिक अधिकार इस सभा को प्राप्त हैं।

इंगलैण्ड में कोई भी मानवीय शक्ति इसकी शक्ति को चुनौती नहीं दे सकती। यहाँ तक कि यदि सम्राट् की मृत्यु का सन्देश भी लोक सभा पारित करके सम्राट् के पास भेजे, तो भी सम्राट् उसे अस्वीकृत नहीं कर सकता। जब कभी संसद का विघटन, समारम्भ एवं अन्य संगठन आदि होते हैं, तो वे सब लोक सभा में ही किये जाते हैं। इस सभा के वाद-विवाद, कार्य-कलाप आदि बड़े ही महत्वपूर्ण होते हैं। यदि कोई व्यक्ति इसका सदस्य बन जाता है, तो उसका नाम देश के सुप्रसिद्ध नेताओं में गिना जाने लगता है। वास्तव में लोक सभा ब्रिटिश इतिहास का गौरवमय प्रतीक है। यही कारण है कि इसे संसदों की जननी कहा जाता है। इसके अभाव में इंगलैण्ड का शासन-तंत्र प्राणहीन हो सकता है। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि लोक सभा ने एक लम्बे संघर्षों के परिणामस्वरूप ही अपना अस्तित्व जमा पाया है। उसके अधिकार जनता द्वारा नहीं मिले अपितु शनैः शनैः सम्राट द्वारा ही उसको शक्ति प्राप्त हुई है। अतः उसके संगठन तथा प्रातिनिधिक व्यवस्था को जान लेना आवश्यक है।

पहले ही इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा चुका है कि ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट का विकास सदियों पूर्व हुआ। परन्तु इसका विकास जनता द्वारा प्रदत्त अधिकारों से न होकर सम्राट द्वारा हुआ है। शनैः-शनैः काल-क्रम से सम्राट की प्रभुता क्षीण होती गई और वह लोक सभा में समाविष्ट हो गई।

लोक सभा का आन्तरिक संगठन

लोक सभा के कार्यों एवं अधिकारों को जानने के पूर्व उसके आन्तरिक संगठन को भी जान लेना परमावश्यक है। लोक सभा नव-निर्वाचित सरकार के अतिरिक्त कतिपय अधिकारियों तथा समितियों का संगठन करती है। समितियों के कार्यकर्त्ताओं पर नियंत्रण किया जाता है।

लोकसभा का अध्यक्ष—लोक सभा के अधिकारी-वर्ग में अध्यक्ष का स्थान सर्वाधिक उल्लेखनीय है। सर्व प्रथम अध्यक्ष की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी। यही व्यक्ति प्रमुख प्रवक्ता होता था। अध्यक्ष ही जनता की समस्त असुविधाओं को सम्राट के सम्मुख रखता था तथा उनके निराकरण की अभ्यर्थना भी करता था। एक लम्बे संघर्ष के बाद लोक सभा को अपना अध्यक्ष चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई है। अब नव-निर्वाचित लोक सभा का सत्तारूढ़ दल अपने अध्यक्ष को निर्वाचित करता है। प्रधान मन्त्री उस व्यक्ति का नाम निर्देश करता है तथा अन्य सदस्य प्रायः उसी का समर्थन किया करते हैं। लोक सभा का अध्यक्ष बहुमत से एवं निर्विरोध चुन लिया जाता है। यदि पुरानी लोक सभा का अध्यक्ष पुनः अध्यक्ष बनना चाहता है, तो उसी को सर्वसम्मति से चुन लिया जाता है। इसके साथ ही आम

चुनाव मे भी भूतपूर्व अध्यक्ष के विरोध में कोई दल अपना प्रत्याशी नहीं खडा करता है। यदि संयोगवश कोई प्रतियोगी ऐसा करने का दुस्साहस करता भी है, तो उसकी गहरी पराजय होती है और पर्याप्त निन्दा की जाती है। १९३५ ई० मे फिट्जराय के विरुद्ध श्रमिक दल ने अपना एक प्रतियोगी खड़ा किया था। फलतः उसकी निन्दा भी की गई तथा पराजय भी हुई। इस प्रकार लोक सभा का अध्यक्ष एक बार निर्वाचित होने पर बारम्बार निर्वाचित होता रहता है। चाहे उसके दल की सरकार हो अथवा विरोधी दल की उसकी स्थिति में कोई भी मौलिक अन्तर नही आता है। अध्यक्ष पूर्व निर्वाचन तो दलीय नीति पर लड़ता है किन्तु अध्यक्ष होने पर वह सर्वदा के लिए अपने दल को तिलांजलि दे देता है। अध्यक्ष जीवन भर कार्य करता है अथवा जब स्वयं अध्यक्ष नही रहना चाहता है, तब उसे पृथक् किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

अध्यक्ष के पद पर आसीन होने पर वह किसी भी प्रकार के राजनीतिक संगठनों में भाग नहीं ग्रहण कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह राजनीतिक दलो के क्लबों में भी नहीं जा सकता है। उसको तटस्थ राजनीति का सहारा लेना पड़ता है। अध्यक्ष राजनीति सम्बन्धी तथ्यों की आलोचना, भाषण एवं लेख लिखने के कार्यों से सर्वथा पृथक् रहता है। यही कारण, है वह सर्वसम्मत एव निर्विरोध निर्वाचित किया जाता है। इसकी निष्पक्षता ही सबसे बड़ा गुण है। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति यदि दीर्घकाल तक अध्यक्ष पद पर आसीन रहता है, तो निःसन्देह उसका अनुभव हो जाता है। वह राजनीतिक कार्यकलापो का विद्वान बन जाता है। फलतः इन्हीं कारणों से अध्यक्ष को विरोधी तथा सत्तारूढ़ दोनों ही दल आदर की दृष्टि से देखते हैं तथा उसका सम्मान करते हैं। अध्यक्ष को दस सहस्र पौण्ड वार्षिक वेतन के रूप में मिलता है, एक सुविशाल भवन भी रहने के लिए दिया जाता है। इसके साथ ही अवकाश प्राप्त करने पर उसको आजीवन अवकाश वृत्ति प्रदान की जाती है। अध्यक्ष को अन्त में हाउस आफ लार्ड्स का सदस्य भी बनाया जाता है। वेतन - 13000

अध्यक्ष के अधिकार—लोक सभा के अध्यक्ष को भी पर्याप्त अधिकार मिले हैं। वह अपनी अधिकारपरता से विविध कार्यकलापों का सम्पादन करता है। अध्ययन की सुविधा के लिए अध्यक्ष के अधिकारों का संक्षेप में विवेचन निम्न रीति से किया जा सकता है:—

(क) सभा की अध्यक्षता—लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता करने का अधिकार इसको प्राप्त है। यह सभापति के रूप में बैठक की सम्पूर्ण कार्यवाहियों का

विधिपूर्वक संचालन करता है। राजमुकुट के चिह्न से अंकित एक रजत-दण्ड इसकी मेज पर रक्खा रहता है। वह रजत-दण्ड सम्राट द्वारा प्राप्त अधिकारों का सूचक एवं अध्यक्ष की शक्तिपरता का प्रतीक होता है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि जब लोक सभा सम्पूर्ण समिति के रूप में समवेत होती है, तब अध्यक्ष इसकी अध्यक्षता नहीं करता है।

(ख) भाषण की अनुमति का अधिकार—अध्यक्ष लोक सभा में भाषण देने वाले इच्छुक सदस्यों को समय तथा अनुमति देता है। कोई भी सदस्य इसकी अनुमति के बिना बोल नहीं सकता है। बोलने का इच्छुक सदस्य अपने स्थान पर खड़ा हो जाता है। यदि वह अध्यक्ष द्वारा देख लिया जाता है, तो उसको भी समय प्रदान किया जाता है। सदस्यगण अपने भाषण में अध्यक्ष को ही सम्बोधित करते हैं।

(ग) अनुशासन की व्यवस्था–अध्यक्ष लोक सभा में अनुशासन बनाये रखने का हर सम्भव प्रयास करता है। वह शान्ति, शिष्टता एवं प्रासंगिकता की आनुपूर्विक मर्यादा का दृढ़तापूर्वक पालन करवाता है। किसी भी सदस्य को अनुशासन भंग करने पर यह अनेक प्रकार के दण्ड दे सकता है। उदाहरणार्थ प्रयुक्त अपशब्दों को वापस कराना, नाम-निर्देशन करना, निन्दा का प्रस्ताव, बैठक में कुछ अल्पकालीन बहिष्कृति याने बाहर जाने की आज्ञा देना आदि दंड अध्यक्ष दे सकता है। यदि कोई सदस्य बलात् आदेशों एवं परम्परागत अनुशासन के नियमों का उल्लंघन करता है तो अध्यक्ष उसको बलपूर्वक सदन से बाहर निकलवा सकता है।

(घ) आपत्तियों का निर्णय—किसी भी नियम सम्बन्धी आपत्ति का विधेयक परक निर्णय अध्यक्ष ही करता है। उसका निर्णय अन्तिम समझा जाता है। इसी प्रकार की विधेयक सम्बन्धी विवाद के विषय में अध्यक्ष अपनी व्याख्या देता है। १६११ ई० के एक्ट के अनुसार अर्थ विधेयकों की प्रस्तुति एवं उनका पारण केवल लोक सभा में किया जाता है। लार्ड सभा अर्थ विधेयक पर कुछ भी विरोधात्मक कार्यवाही करने में सफल नहीं हो सकती है। किन्तु कभी-कभी विधेयकों के विषय में यह आशंका हो जाती है कि कौन विधेयक है और कौन सा नहीं। फलतः ऐसी आशंका के समय अध्यक्ष का निर्णय सर्वमान्य एवं अन्तिम समझा जाता है।

(ङ) विवाद समापन एवं निर्णय का अधिकार—लोक सभा का अध्यक्ष किसी भी वाद-विवाद को समाप्त करने के लिए प्रस्तुत करता है। इसके उपरान्त वह उक्त विधेयक या विवाद पर निर्णय करने के लिए मतदान कराता है। मतदान में अधिक मतों द्वारा समर्थित तथ्य के पारित होने की घोषणा वही करता है। यदि

दोनों पक्षों में मत बराबर होते हैं तो वह अपना एक निर्णायक मत देकर प्रस्ताव को पारित कर देता है। अध्यक्ष को एक मत देने का अधिकार होता है क्योंकि वह भी इस सभा का निर्वाचित सदस्य होता है।

(च) **प्रतिनिधित्व का अधिकार**—लोक सभा का वास्तविक प्रतिनिधित्व यही अध्यक्ष करता है। सभी प्रकार के आवेदन-पत्र उसी के पास आते हैं तथा पारित किये गये विधेयकों पर इसी के हस्ताक्षर रहा करते हैं। वही सम्राट से विभिन्न अधिकारों की याचना करता है।

(छ) **सीमा-आयोग की अध्यक्षता**—१६४५ ई० के लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अनुसार निर्वाचन-क्षेत्रों का सम्यक् विभाजन करने के लिए एक सीमा आयोग बनाया गया है। इस आयोग की अध्यक्षता करने का अधिकार अध्यक्ष को प्राप्त है क्योंकि निर्वाचन-क्षेत्रों के विभाजन को दलगत राजनीति से पृथक् रखने का प्रयास किया गया है। फलतः इस कार्य को निष्पक्षतापूर्वक सम्पादित करने का कार्य अध्यक्ष ही कर सकता है। इसलिए उसी को यह गुरुतर कार्य सौंपा गया है।

उपर्युक्त विवरणों से अध्यक्ष के अधिकारों पर प्रकाश पड़ जाता है। अध्यक्ष के अधिकारो को थोड़े शब्दों में बाँधना बड़ा कठिन है। **डा० जेनिंग्स** का मत है कि अध्यक्ष द्वारा प्रयुक्त प्रतिष्ठा एवं अधिकारों का संख्यात्मक संकेत करना असम्भव है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव-परिधि लेख से स्पष्टतः व्यक्त नहीं की जा सकती। अभिव्यक्ति नियम, दीर्घ परम्पराएँ, पुरातन उत्सव एवं विचारपूर्ण नीतियों द्वारा समाहित, वास्तविक अधिकारपरता का वर्णन नहीं हो सकता है। प्रथाएँ एवं जागरुकता दोनों मिलकर अध्यक्ष-आसन पर बैठने वाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं अधिकारपरता को व्यक्त करती हैं जिसका अभी तक अतिक्रमण नहीं किया जा सका है। ये शब्द अध्यक्ष के अधिकारों पर चरितार्थ होते हैं।

अध्यक्ष ने अपने इस दायित्व का निर्वाह बड़ी निष्पक्षता से करने का प्रयास किया है—इतिहास इस बात का साक्षी है। अध्यक्ष की इस निष्पक्षता का परिचय हमें कर्नल डी० क्रिफ्टन ब्राउन के निम्नांकित शब्दों से मिल जाता है : अध्यक्ष के रूप में मैं न तो शासन का आदमी हूँ और न तो विरोधी दल का। मैं लोक सभा का आदमी हूँ और सबसे पहले पीछे बैठने वालों का।

साधन समिति का सभापति तथा उपाध्यक्ष

लोक सभा का एक उपाध्यक्ष भी होता है। सरकार की तरफ से ही इसका नाम निदेशन किया जाता है। अध्यक्ष की भाँति उपाध्यक्ष भी सम्पूर्ण कार्यवाहियों का संपादन निष्पक्ष रूप से करता है। साधन समिति अथवा आदान समिति के रूप में

जब सदन की बैठक प्रारम्भ होती है तब उपाध्यक्ष ही सभा का सभापतित्व करता है। इस प्रकार समिति में आय-व्यय सम्बन्धी विषयों पर विचार किया जाता है तथा उस पर निर्णय किया जाता है। कार्य की दृष्टि से उपाध्यक्ष का पद भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है। साधन समिति का एक उपसभापति भी होता है। यह उपाध्यक्ष की भाँति ही कार्य में दक्ष तथा महत्वपूर्ण अधिकारी माना जाता है। इसके साथ ही उपाध्यक्षों एक का मण्डल होता है। यह मण्डल अपने विभिन्न उच्च अधिकारियों की सहायता करता है।

लिपिक (Clerk)—लोक सभा में एक प्रधान लिपिक तथा दो सहायक लिपिक भी नियुक्त किये जाते हैं। यद्यपि सामान्यतया परम्परा के रूप में उनको लिपिक ही कहा जाता है किन्तु ये बड़े ही योग्य, अनुभवी एवं प्रतिभावान विद्वान अधिकारी होते हैं। कार्य की दृष्टि से भी इनके पद की गुरुता का स्पष्ट आभास मिल सकता है। लिपिकों के बैठने का स्थान अध्यक्ष के ठीक सामने होता है। अध्यक्ष की आज्ञानुसार ये लोक सभा के दैनिक अधिकारों को सूचीबद्ध करते हैं। सभा के निर्णयों को लिपिबद्ध करना तथा विभिन्न विषयों पर अध्यक्ष को परामर्श देने का कार्य यही करता है। सभा में पेश किये जाने वाले प्रश्नों के औचित्य एवं अनौचित्य पर लिपिक ही विचार करता है। प्रश्नों के औचित्य पर आधिकारिक विचार करना तथा निर्णय देने का कार्य बड़ा ही उत्तरदायित्वपूर्ण है।

लोक सभा की समितियाँ

प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली के अनवरत विकास के साथ ही लोक सभा के कार्यों की गुरुता बढ़ती जा रही है। अतः इस कार्यगुरुता एवं व्यापकता के समाधान के लिए ग्रेट ब्रिटेन की लोक सभा में समितियों का संगठन किया जाता है। इन विभिन्न समितियों में कार्यों के अनुसार सुगमतापूर्वक विचार एवं कार्य सम्पादन में बड़ा ही सहयोग मिला है। यही कारण है कि इनका व्यापक प्रयोग अनुदिन बढ़ता ही रहता है। अतः लोक सभा की समितियों के संक्षिप्त विवरण का स्थापन निम्न रीति से किया जा सकता है :—

(१) **सम्पूर्ण सदन की समिति**—अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करने के लिए सम्पूर्ण लोक सभा एक समिति के रूप में एकत्र होती है। इस समिति की कार्य-प्रणाली में लोक सभा की अपेक्षा अन्तर होता है। अध्यक्ष इस समिति की अध्यक्षता नहीं करता है अपितु उपाध्यक्ष सभापतित्व करता है। अध्यक्ष के सम्मुख रखा जाने वाला रजत-दण्ड मेज के नीचे रख दिया जाता है। लोक सभा की अपेक्षा कार्यवाहियों के नियम कुछ ढीले पड़ जाते हैं। वाद-विवाद में स्वतन्त्रता होती है।

भाषण की स्वतन्त्रता अनियन्त्रित रहती है। प्रस्ताव के समर्थन में किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रहती है। किसी भी प्रश्न पर अनेक बार बोलने का अधिकार सर्व-सुलभ हो जाता है। भाषणों के समय सम्पुट का प्रयोग नहीं किया जाता है। कार्य की दृष्टि से इस समिति के सम्मुख तीन प्रकार के विधेयक प्रस्तुत किये जाते हैं। अर्थ विधेयक, अस्थायी आदेश तथा मन्त्रिमण्डलीय राजनीतिक मतभेदपरक विधेयकों को इस समिति में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है। किन्तु अब इस प्रक्रिया में कुछ संशोधन कर दिया गया है। १९४५ ई० में श्रमिक दल ने इस पद्धति में संशोधन करके निम्नलिखित विधेयकों को इस समिति में विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने का विधान बनाया है :—

१—आय-व्यय विधेयक।

२—तत्काल पारित होने वाले विधेयक।

३—एकानुच्छेदी विधेयक (जो विधेयक विवेचन की दृष्टि से अत्यन्त संक्षिप्त एवं सरल होते हैं)।

४—संवैधानिक समस्या मूलक उच्चकोटि के विधेयक।

५—अस्थायी आदेशों के समर्थक विधेयक।

अब सम्पूर्ण सदन समिति में केवल उपर्युक्त विधेयक ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

(२) **स्थायी समितियाँ** (Standing Committee)—स्थायी समितियों की सर्वप्रथम स्थापना १८८२ ई० में की गई। इस सदी के उत्तरार्द्ध में लोक सभा के कार्यों में गुरुता आ गई। फलतः स्थायी समितियों के निर्माण की दिशा में उसे क्रियाशील होना पड़ा। स्थायी समितियों की संख्या निर्धारित नहीं की गई है, आवश्यकतानुकूल इनकी संख्या घटाई-बढ़ाई गई है। प्रारम्भ में केवल दो ही समितियाँ थीं किन्तु महायुद्ध के कारण स्थायी समितियों की संख्या भी छः तक पहुँच गई। एक स्थायी समिति में लगभग साधारणतया २० से लेकर ३० सदस्य तक होते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन सदस्यों का चुनाव एक विशेष समिति द्वारा किया जाता है। इस समिति में ११ सदस्य तक होते हैं तथा इसको चुनाव समिति (Election Committee) कहा जाता है। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि इन स्थायी समितियों में लोक सभा के विरोधी तथा सत्तारूढ़ दोनों ही दलों के सदस्यों को चुना जाता है। इन समितियों का संगठन सत्र के प्रारम्भ में किया जाता है तथा इनकी कालावधि ५ वर्ष होती है। जब किसी विधेयक का द्वितीय वाचन हो जाता है तो उसको इन समितियों के पास विचारार्थ भेजा जाता है। किसी भी स्थायी समिति के पास किसी भी प्रकार का विधेयक भेजा जाता है। परन्तु स्थायी समिति के सदस्यों का उक्त विधेयक के विषय में ज्ञान का होना अपेक्षित

है। सदस्यगण बड़ी ही सूक्ष्मतापूर्वक विधेयक के सभी तथ्यों की मीमांसा करते हैं। विधेयक पर विचार करने का समय निर्धारित कर दिया जाता है। उस निर्धारित समय के अन्दर ही समिति अपना विचार व्यक्त कर देती है। समिति, लोकसभा से आये हुए विधेयक के विषय में संशोधन, परिवर्द्धन अथवा परिवर्तन का प्रस्ताव कर सकती है। प्रायः सरकार समिति द्वारा प्रदत्त सुझावों को मान लेती है। यदि किसी विभागीय मन्त्री को अपने विभाग से सम्बन्धित विधेयक में प्रस्तावित संशोधन अमान्य होता है, तो वह उस पर अपनी आपत्ति प्रकट करके उसको निर्मूल कर सकता है। सरकार के ही सदस्य स्थायी समितियों में अधिक होते हैं। अतः किसी तीव्र विरोध की आशंका नहीं होती है। तीव्र प्रतिवाद उठने पर सरकार उस संशोधन को अस्वीकृत भी कर सकती है।

यह उल्लेखनीय है कि कुछ समय पूर्व इन समितियों की क्रियाशीलता में सम्पुटों का प्रयोग नहीं किया जाता था। किन्तु कार्य की अधिकता से कुठार सम्पुट का प्रयोग किया जाने लगा है। लोक सभा की बैठक के साथ ही इन समितियों की भी कार्यवाही लोक सभा भवन के ऊपरी कक्ष में चला करती है। किसी वाद-विवाद पर मतदान करने के लिए सूचक घण्टी बजाई जाती है और सभी सदस्य जाकर अपना मतदान कर देते हैं। इस प्रकार सदस्य एक साथ ही दो कार्य करके देश के बहुमूल्य समय की बचत करते हैं।

सत्रीय समितियाँ—कतिपय सत्रीय समितियाँ होती हैं। इनका संगठन केवल सत्रीय कार्यों के नियोजनार्थ समितियों एवं सदस्यों की नियुक्ति के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ चुनाव समिति का संगठन केवल उसी कार्य की सम्पूर्ति के लिए किया जाता है।

विशेषाधिकार समिति—सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए दस सदस्यों की एक समिति बनाई जाती है। इसको विशेषाधिकार समिति कहते हैं। लोक सभा के सभी सदस्यों को कतिपय विशेषाधिकार उपलब्ध हैं। भाषण पर बन्दी न बनाये जाने का अधिकार, न्यायालयीय हस्तक्षेप न होने की स्वतन्त्रता, साक्षी देने में स्वतन्त्रता एवं मान-हानि के विरुद्ध कार्यवाही करने की स्वतन्त्रता लोक सभा के सदस्यों को उपलब्ध होती है। अतः जब कभी इस प्रकार का विवाद उठता है, तो वह विशेषाधिकार समिति के पास निर्णयार्थ भेज दिया जाता है। समिति उस विषय पर विचार करके अपना निर्णय देती है कि विशेषाधिकारों का उल्लंघन हुआ है अथवा नहीं, या कहाँ तक उल्लंघन हुआ है।

विशिष्ट समितियाँ—ये समितियाँ समय-समय पर बनती तथा विघटित होती रहती हैं। किसी विशेष प्रश्न पर विचार करने के लिए इन समितियों का

संगठन किया जाता है। इनमें १५ सदस्य तक होते हैं। ये सदस्य अपना अध्यक्ष स्वयं चुनते हैं। इनके विचारणीय प्रश्न से सम्बन्धित अनेक विशेषज्ञ व्यक्तियों से परामर्श भी ग्रहण किया जाता है। अपने अन्वेषण के उपरान्त ये समितियाँ अपना निर्णय प्रकट किया करती हैं। कार्य समिति के अनन्तर समिति विघटित हो जाती है। यही इसकी विशेषता होती है। कभी-कभी दोनों सदनों की संयुक्त विशिष्ट समिति भी बनाई जाती है। यह भी उल्लेखनीय है कि इन समितियों की कोई संख्या निश्चित नहीं। किन्तु प्रत्येक सत्र के अधिवेशन में इनकी संख्या लगभग २० तक पहुँच जाती है।

कामन्स सभा के कार्य

प्रश्न—कामन्स सभा के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उसका मूल्यांकन कीजिये।

परिचय—ग्रेट ब्रिटेन की लोक सभा पूर्ण स्वतन्त्र एवं शक्ति-सम्पन्न है। सभी प्रकार के विधि-विधानों का सृजन यह कर सकती है। यहाँ तक कि यह इंगलैण्ड के संविधान को भी सामान्य विधि-निर्माण प्रक्रिया से बदल सकती है। किसी लेखक ने ठीक ही लिखा है कि इंगलैण्ड की संसद सभी प्रकार के कार्यों को कर सकती है, केवल वह पुरुष को स्त्री तथा स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती है। **डा० जेनिंग्स** का कथन है कि लोक सभा (पार्लियामेण्ट) का कार्य शासन करने की अपेक्षा उसकी समालोचना करना है। वस्तुतः लोक सभा के विभिन्न उपादानों के पूर्वापर प्रसंगों पर दृष्टि डालने से उसके कार्यकलापों पर सुस्पष्ट प्रकाश पड़ जाता है।

एक प्रसिद्ध संविधान-शास्त्री का कथन है कि लोक सभा अनन्त शक्तियों से समन्वित पुरातन विधान-मण्डल का एक उदाहरण है।

हार्वे बेथर महोदय के अनुसार कामन्स सभा के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(१) शासन की सहायता करना, उसकी निगरानी रखना तथा उसकी आलोचना करना;

(२) शासन सम्बन्धी मामलों के विषय में वाद-विवाद करना;

(३) शासन के सम्बन्ध में नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना;

(४) धन की प्राप्ति और व्यय पर नियंत्रण करना;

(५) विधि-निर्माण में सहायता देना।

इसी प्रकार लोक सभा की कार्यशक्ति पर एक अन्य विद्वान ने निम्न रीति से अपने विचार व्यक्त किये हैं : संसद वस्तुतः एक मशीन की भाँति है जो विधि का निर्माण करती है। करारोपण, धन का सदुपयोग, मन्त्रियों से प्रश्न करना, नीतियों पर निर्णय पारित करना आदि विभिन्न कार्यों का सम्पादन यह करती

है। इस प्रकार यह सुस्पष्ट हो जाता है कि लोक सभा के कार्यों एवं अधिकारों का क्षेत्र असीमित है। उसकी कार्य-शक्ति का कोई भी चुनौती नहीं दे सकता है। लोक सभा की कार्य-प्रणाली का हम निम्नलिखित रूप में अध्ययन कर सकते हैं :

१. **सत्र का आरम्भ**—जब सम्पूर्ण देश में निर्वाचन समाप्त हो जाते हैं तब सम्राट बहुमत प्राप्त दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। बहुमत प्राप्त दल की ही सरकार बनती है। निर्वाचन के लगभग ढाई सप्ताह बाद नई सरकार का सत्र आरम्भ किया जाता है। सत्र प्रारम्भ होने के दिन दोनों सभाओं (हाउस आफ लार्डस तथा हाउस आफ कामन्स) के सदस्य अपने-अपने भवन में एकत्र होते हैं। इसी समय सभा हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के सभी सदस्यों को लार्ड सभा में एकत्रित होने के लिए आमन्त्रित करती है। आमन्त्रण का कार्य लार्ड सभा के एक विशेष सन्देशवाहक द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। जब लोक सभा के सभी सदस्य लार्ड सभा में एकत्र हो जाते हैं तो अधिवेशन प्रारम्भ होने का आज्ञा-पत्र सुनाया जाता है। लार्ड चान्सलर सम्राट की तरफ से नई कामन्स सभा को अपना अध्यक्ष चुनने का आदेश देता है। इतनी कार्यवाही होने के पश्चात् लोक सभा के सदस्य अपने भवन में पुनः लौट जाते हैं और अपने अध्यक्ष का चुनाव करते हैं। दूसरे दिन अध्यक्ष सहित सभी सदस्य पुनः लार्ड सभा में पुनः उपस्थित होते हैं। इस दिन अध्यक्ष अपने चुनाव की घोषणा करता है तथा लार्ड चान्सलर उस पर सम्राट की तरफ से स्वीकृति पढ़कर सुनाता है। इसके बाद औपचारिक रीति से अध्यक्ष अपने पुरातन अधिकारों की माँग प्रस्तुत करता है तथा सम्राट की ओर से उसको स्वीकृति एवं आश्वासन प्रदान किया जाता है। इसके उपरान्त लोक सभा के सभी सदस्य अपने भवन में लौट जाते हैं। यहाँ पर प्रत्येक सदस्य सम्राट के प्रति निष्ठा की शपथ लेता है तथा सदस्य-सूची पर हस्ताक्षर भी करता है।

उपर्युक्त औपचारिक क्रियाओं के बाद सत्र का श्री गणेश किया जाता है। सत्र के प्रारम्भ की प्रथम प्रक्रिया सम्राट के भाषण से होती है। सम्राट का भाषण सुनने के लिये लोक सभा के सभी सदस्य पुनः लार्ड सभा में एकत्र होते हैं। यद्यपि यह भाषण सम्राट का कहा जाता है किन्तु इस भाषण को प्रधान मन्त्री तैयार किया करता है। इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त भाषण सुनने के लिए सम्राट की उपस्थिति आवश्यक नहीं है। कभी-कभी सम्राट इस अवसर पर उपस्थित होता है। सम्राट यदि कभी आता भी है, तो वह पुरातन परिपाटी के अनुसार बड़ी धूम-धाम तथा जुलूस के साथ आता है। परन्तु सम्राट की अनुपस्थिति में पांच लार्डों का आयोग बना दिया जाता है तथा लार्ड चान्सलर उस भाषण को पढ़ दिया करता है। भाषण सुनने के उपरान्त लोक सभा के सदस्य अपने सदन में लौट जाते हैं।

इस सदन में सम्राट का भाषण पुनः पढ़ा जाता है। इस भाषण में गृहनीति एवं उसकी सफलता, परराष्ट्रों के सम्बन्ध में आवश्यक विधेयक के पारण का पूर्वाभास तथा सरकार के विगत कार्यों का सिंहावलोकन किया जाता है। लोक सभा के भाषण समाप्त होने पर प्रधान मन्त्री उसके हेतु धन्यवाद का प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। इस अवसर पर विरोधी दल सम्राट के भाषण की आलोचना करता है। भाषण की त्रुटियों का निर्देश कराया जाता है। विरोधी दल उस भाषण के संशोधन एवं परिवर्द्धन का प्रस्ताव रखता है। सरकारी दल इसका विरोध करता है। यदि विरोधी दल का संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो सत्तारूढ़ दल की पराजय सी हो जाती है। अतः सरकार पहले से ही सजग रहती है तथा बिना किसी संशोधन के उस भाषण के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव पारित करती है।

सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ग्रेट ब्रिटेन में अनेक प्रकार की प्राचीन परम्परा एवं रूढ़ियों को माना जाता है। ब्रिटिश जाति विश्व में सबसे अधिक रूढ़िवादी तथा पुरातनप्रिय है। लोक सभा ने सम्राट से अधिकार प्राप्त किये हैं। अतः अपने अधिकार की सर्वोपरिता का प्रदर्शन करने के लिए एक अन्य विधेयक पारित किया जाता है। यद्यपि इस विधेयक में राजनीतिक, सामाजिक अथवा अन्य किसी भी नीति से सम्बन्ध नहीं रहता है परन्तु इसको पारित करना ही लोक सभा की शक्तिमत्ता का प्रतीक है क्योंकि भाषण में भावी विधेयकों के पारण का पूर्वाभास निहित रहता है। अतः उसके अनुसार चलने के लिये लोक सभा बाध्य नहीं है। केवल दिखाने के लिये इस विधेयक को पारित किया जाता है।

१६०५ ई० में कतिपय क्रांतिकारियों ने लोक सभा के भवन को बारूद से उड़ा देने का षड्यंत्र प्रारम्भ किया था किन्तु वह सफल न हो सका था। अतः इसको विफल करने के लिए सत्र के प्रारम्भ में सम्पूर्ण भवन की तलाशी लेने की प्रथा प्रचलित की गई। उस काल में सोलहवीं सदी की पुरानी लालटेनें तथा जिन पोशाकों का प्रयोग किया गया था, अब भी सत्र आरम्भ होने के पूर्व, सभी सदस्य उन पोशाकों को पहन कर तथा हाथों में वही लालटेनें लेकर सम्पूर्ण भवन की तलाशी लेते हैं। यद्यपि वर्तमान समय में सभी कक्षों में विद्युत का प्रबल प्रकाश है, परन्तु अँग्रेज लोग अपनी रूढ़िप्रियता प्रदर्शन के लोभ का संवरण कैसे कर सकते हैं?

लोक सभा का विसर्जन—सत्र की अवधि पूर्व से ही निर्धारित रहती है। अथवा सत्र-समापन होने की तिथि एवं सूचना प्रधान मन्त्री के परामर्श से सम्राट द्वारा प्रसारित की जाती है। सम्राट की सूचना प्राप्त करके लोक सभा विसर्जित हो जाती है। विसर्जन के समय जो कार्य रह जाता है वह स्थगित समझा जाता है। यदि

किसी विधेयक को पारित करने के लिए उसके दो वाचन पूरे हो जाते हैं किन्तु यदि इसी अवधि में सत्र समाप्त हो जाता है, तो उस विधेयक को स्थगित समझा जाता है। अगले सत्र में यदि उसको पारित करना ही सरकार का अभीष्ट होता है, तो पुनः प्रथम वाचन से विधेयक का समारम्भ किया जाता है। विसर्जन के अवसर पर भी सम्राट का भाषण पढ़ा जाता है। इस भाषण में लोक सभा के सदस्यों को उनके सुकृत के हेतु धन्यवाद दिया जाता है।

लोक सभा का स्थगन—लोक सभा की बैठक यदि अल्प समय के लिए स्थगित की जाती है तो उसको सभा का स्थगन कहा जाता है। यह कुछ दिन अथवा कुछ घण्टों के लिए ही होता है। इसके अतिरिक्त सभा स्थगन के उपरान्त पहले के कार्यों को पूर्ववत् प्रारम्भ किया जाता है। यह स्थगन कार्य लोक सभा अपनी सुविधा के अनुसार किया करती है।

लोक सभा का विघटन—ग्रेट ब्रिटेन के संविधान में लोक सभा की अवधि ५ वर्ष निर्धारित है किन्तु सत्तारूढ़ दल इसका विघटन बीच में भी करवा सकता है। विघटन से वर्तमान लोक सभा समाप्त हो जाती है तथा उसके स्थान पर पुनः सार्वदेशिक निर्वाचन किये जाते हैं। यद्यपि पाँच वर्ष की अवधि बीतने पर इसका विघटन विधिवत् हो ही जाता है परन्तु सत्तारूढ़ दल युद्ध अथवा अपने दल की स्थिति कमजोर होते ही इसका विघटन करवा सकता है।

सभा की बैठकें—सभा की बैठक ईश्वर-प्रार्थना से प्रारम्भ की जाती है। बैठक प्रारम्भ होने के पूर्व ही एक पादरी, एक सशस्त्र अंगरक्षक तथा रजत-दण्ड वाहक लोक सभा के अध्यक्ष के साथ सभा में प्रविष्ट होते हैं। पादरी ईश-प्रार्थना करता है तथा वह रजत-दण्ड मेज पर रख दिया जाता है। इसके बाद अध्यक्ष गण-पूर्ति करता है। यदि ४० की संख्या में सदस्य उपस्थित होते हैं, तो सभा की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जाती है। गण-पूर्ति के अभाव में बिजली की सूचक घण्टियाँ बजाई जाती हैं। इससे इधर-उधर बैठे हुए सदस्य सभा में आ जाते हैं। इस कार्य के बाद ही अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करता है। आसन ग्रहण करने के बाद द्वारपाल सभा की बैठक प्रारम्भ होने की घोषणा करता है।

लोक सभा की बैठकें सोमवार से प्रारम्भ होती हैं। इन बैठकों का क्रम शुक्रवार तक चला करता है। सप्ताह में केवल पाँच दिन तक ही बैठकें होने का नियम है। बैठकें भारतीय समय से ढाई बजे प्रारम्भ की जाती हैं तथा साढ़े १० से लेकर १२ बजे रात तक चलती रहती हैं। शुक्रवार के दिन बैठक ११ बजे से प्रारम्भ की जाती है। जब बैठक रात्रि के समय समाप्त की जाती है तब एक विचित्र एवं रोचक प्रथा का पालन किया जाता है। यह प्रथा बड़ी पुरानी है। एक समय ऐसा था कि

रात्रि के सन्नाटे में लन्दन नगर की सड़कों पर अकेले चलना भयावह था । अतः जब बैठक की समाप्ति होती है तब द्वारपाल आवाज लगाता है क्योंकि पुराने समय में संसद सदस्यों के साथ सशस्त्र अंगरक्षक भेजे जाते थे । अतः इस प्रथा का आज भी औपचारिक रूप से पालन किया जाता है जिससे कि कोई सदस्य एकाकी न छूट जाय । इसके साथ ही दूसरे दिन की बैठकों में आने के लिए द्वारपाल सभी सदस्यों को कल पुनः इसी समय आने का कष्ट करें आदि वाक्य कह कर सावधान करता है । यह भी ब्रिटिश रूढ़िप्रियता का ज्वलन्त उदाहरण है ।

लोक सभा के दैनिक कार्यक्रम—लोक सभा के दैनिक कार्यक्रमों में कई चीजों का समावेश होता है । सर्वप्रथम अध्यक्ष आकर अपना आसन ग्रहण करता है । तदन्तर वैयक्तिक विधेयकों के मूल उपादानों पर विचार किया जाता है । इसके साथ ही यदि आवेदन-पत्र आदि होते हैं, तो सभा उसको ग्रहण करती है । इतनी कार्य-वाही होने के बाद प्रश्न पूछने का घण्टा आरम्भ होता है । कोई भी सदस्य चाहे विरोधी दल का हो अथवा सत्तारूढ़ दल का, विभिन्न विभागों के मन्त्रियों से उनके विभाग के विषय में पूछ सकता है । पूरक प्रश्न भी इसी अवसर पर पूछे जा सकते हैं । प्रत्येक सदस्य केवल दो प्रश्न पूछ सकता है । प्रश्न समाप्त होने के बाद यदि कोई नवनिर्वाचित सदस्य होता है, तो उसका परिचय सदन में कराया जाता है । इन कार्यों के पश्चात् सदन में दैनिक कार्यक्रम पढ़ा जाता है तथा सार्वजनिक विधेयक पर वाद-विवाद आदि आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है । सदन का अधि-कांश समय विभिन्न विधेयकों के पारण तथा तत्सम्बन्धी वाद-विवाद में ही व्यतीत होता है ।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव—जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है दैनिक कार्यक्रम में प्रश्न पूछने का भी समय निर्धारित रहता है । इस समय में मन्त्रियों से प्रश्न पूछे जाते हैं तथा मन्त्री उनके उत्तर देते हैं । यदि प्रश्नों के उत्तर सन्तोषजनक नहीं होते हैं तो कोई भी सदस्य लोक सभा में कार्य-स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है । इस कार्य-स्थगन प्रस्ताव में किसी सार्वजनिक एवं महत्वपूर्ण विषय पर विचार-विमर्श किया जाता है । सर्वप्रथम कार्य-स्थगन प्रस्ताव पर अध्यक्ष की स्वीकृति आवश्यक होती है । यदि अध्यक्ष उसको उचित समझता है, तो अपनी स्वीकृति प्रदान करता है । अध्यक्ष की स्वीकृति के बाद ४० सदस्यों की सहमति मिलने पर उक्त प्रस्ताव पर बहस करने के लिए बैठक के अन्त में समय निश्चित कर दिया जाता है । इस प्रस्ताव पर विवाद करने का समय निश्चित होता है । यदि उस निर्धारित समय के अन्तर्गत वाद-विवाद पूर्ण न हो सका तो वह प्रस्ताव असफल माना जाता है । यदि दुर्भाग्यवश उस पर मतदान कराया जाता है और वह सफल भी हो

जाता है तो इससे सरकार में अविश्वास प्रकट होता है। फलतः सरकारी पक्ष से उस प्रस्ताव को बातचीत में ही समाप्त कर देने का प्रयास किया जाता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कार्य-स्थगन प्रस्तावों में सार्वजनिक महत्व एवं शासन की किसी भयंकर भूल, उपेक्षा या अत्याचार का निर्देश होना आवश्यक है। इसके साथ ही उसके विवाद की सीमा सुनिश्चित होनी चाहिये अन्यथा वह प्रस्ताव सफल ही नहीं हो सकता। आवश्यक होने पर अध्यक्ष ही उसे अवैध घोषित करके अस्वीकृत कर सकता है।

संसदीय वाद-विवाद—लोक सभा में विधेयक को पारित करने के लिए विभिन्न वाद-विवादों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। वाद-विवाद के द्वारा ही किसी भी विधेयक के औचित्य एवं अनौचित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रायः विरोधी दल सरकारी दल द्वारा प्रस्तुत विधेयकों अथवा प्रशासन नीतियों में त्रुटियों का दिग्दर्शन करता है तथा उनमें संशोधन की भी माँग करता है। कभी-कभी सत्तारूढ़ दल अपने विरोधियों की माँग को स्वीकार भी कर लेता है। परन्तु वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है। विरोधी पक्ष भाषण तथा आलोचना द्वारा ही अपना मन्तव्य प्रकट कर पाते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सदस्यों को वाद-विवाद करने के लिए कतिपय आवश्यक नियमों का पालन करना पड़ता है। वाद-विवाद में भाग लेने वाले इच्छुक सदस्यों को अध्यक्ष की अनुमति लेना आवश्यक होता है। बिना अनुमति के कोई भी सदस्य बोलने का अधिकारी नहीं समझा जाता है। प्रायः विपक्षी दल का नेता अपने दल के बोलने वाले सदस्यों की एक सूची अध्यक्ष को दे देता है। अध्यक्ष उस सूची में उल्लिखित सदस्यों को ही समय दिया करता है। प्रत्येक सदस्य बोलने के समय अपने स्थान पर खड़ा हो जाता है। यदि अध्यक्ष उसको देख लेता है तथा अनुमति प्रदान कर देता है, तो वह अपने स्थान पर से ही बोलता है। भाषण प्रारम्भ करते समय प्रत्येक सदस्य अध्यक्ष को सम्बोधित करता है। किसी सदस्य को न तो सम्बोधित ही किया जा सकता है और न उसका नाम ही लिया जा सकता है। यदि किसी सदस्य विशेष की ओर संकेत करने की आवश्यकता होती है, तो उस निर्वाचन क्षेत्र की ओर संकेत या नाम निर्देश किया जाता है। प्रत्येक सदस्य को केवल एक ही बार बोलने का अधिकार है। किन्तु प्रस्तावक इसका अपवाद होता है। वाद-विवाद के अन्त में विविध आलोचनाओं का ठीक उत्तर देने के लिए वह एक बार पुनः बोल सकता है। इस प्रकार वाद-विवाद को अनेक प्रकार से सुनियन्त्रित एवम् सुव्यवस्थित किया जाता है।

ऊपर वाद-विवाद की प्रणाली का उल्लेख किया जा चुका है। कभी-कभी वाद-विवाद अनियन्त्रित गति तक पहुँच जाया करता है। अतः उसके समापन के

उपाय भी खोज निकाले गये हैं। पहले बहुधा सदस्यगण अपने विरोधी दल या सरकार द्वारा प्रस्तुत विधेयकों को पारित करने में बड़ी ही कठिनाई उपस्थित कर दिया करते थे। विशेषकर आयरलैण्ड के प्रतिनिधियों ने सदन की कार्यवाही में बहुत बड़ा व्यवधान उपस्थित करना प्रारम्भ कर दिया था। इसका कारण यह था कि पार्लियामेण्ट आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता विषयक मांग को स्वीकृत नहीं कर रही थी। फलतः आयरिश सदस्यों ने अपने लम्बे-चौड़े भाषणों द्वारा लोक सभा की कार्यवाही अव्यवस्थित कर दी। अतः इन कारणों से सदन की गति मन्द पड़ गई। अनेक महत्वपूर्ण प्रस्तावों का शीघ्र ही निर्णय नहीं किया जा सकता था। यही कारण है कि १८८१ ई० में इन विवादों के संक्षेपीकरण के लिए कतिपय स्थायी उपाय निकाले गये। इन उपायों को सम्पुट के नाम से अभिहित किया जाता है। इस समय लोक सभा में निम्नलिखित सम्पुट प्रचलित हैं :—

(१) **साधारण सम्पुट**—सदन में भाषणों के समय सम्पुट कभी भी प्रयुक्त किया जा सकता है। कोई भी सदस्य मुख्य प्रश्न पर मतदान की माँग कर सकता है। यदि अध्यक्ष इस सम्पुट को उचित समझता है तथा १०० सदस्य इसके समर्थन में होते हैं तो उक्त प्रश्न पर मतदान कराकर निर्णय ले लिया जाता है। बहुधा सत्तारूढ़ दल के सदस्य विरोधी दलों के भाषण के बीच में ही इस सम्पुट की माँग कर बैठते हैं। यही कारण है कि अध्यक्ष को ऐसी चाल चलनेवालों की माँग को अनुचित घोषित करने का अधिकार प्राप्त है, अन्यथा विरोधी सदस्यों को बोलने का अवसर ही न मिले।

(२) **कुठार सम्पुट**—कभी-कभी वाद-विवाद करने के लिए समय निर्धारित कर दिया जाता है। उस निर्धारित समय के अन्तर्गत वाद-विवाद की क्रिया सम्पन्न की जाती है। यदि समय समाप्त हो जाता है और वाद-विवाद समाप्त होता नहीं, उस पर तुरन्त मतदान ले लिया जाता है। इसी को कुठार सम्पुट कहते हैं।

(३) **कक्ष सम्पुट**—इसे कुठार सम्पुट का संशोधित रूप कहा जा सकता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि प्रत्येक विधेयक में अनेक धाराएँ होती हैं। अतः निर्धारित समय में सभी धाराओं पर विवाद नहीं हो पाता है, परंतु बाद की धाराओं पर कुछ भी विचार करने के लिए समय निर्धारित किया जाने लगा। अधिक महत्व-पूर्ण धाराओं पर अधिक तथा सामान्य धाराओं पर कम समय निर्धारित किया जाने लगा। इस प्रकार एक ही विधेयक को अनेक कक्षों में विभक्त करके विचार करने की प्रक्रिया को कक्ष सम्पुट की संज्ञा दी गई।

(४) **कंगारू सम्पुट**—आस्ट्रेलिया में कंगारू एक पशु विशेष है। छलांग मार-कर चलना ही इसकी विशेषता है। अतः सदन में वाद-विवाद की लम्बी शृंखला के

नियम में इसका प्रयोग किया गया है। पहले ही बताया जा चुका है कि विधेयक के अन्तर्गत अनेक धाराएँ हैं। अतः आवश्यक धाराओं पर विवाद किया जाता है तथा अनावश्यक धाराओं को वैसे ही छोड़ दिया जाता है। उदाहरणार्थ किसी विधेयक में ८० धाराएँ हैं। अत कंगारू सम्पुट की विधि के अनुसार उस पर विचार करने के लिए प्रथम ३० धाराओं पर विवाद हुआ। उसके बाद दस कम महत्वपूर्ण धाराओं को लाँघ कर अगली २० धाराओं पर विवाद पुनः किया गया। इसी प्रकार १० धाराओं को पुनः छोड़कर शेष धाराओं पर विचार-विमर्श किया गया। अतः इस कंगारू-विधि से समय की पर्याप्त बचत होती है और सम्पूर्ण विधेयक पर विचार भी कर लिया जाता है।

उपर्युक्त सम्पुटों के प्रयोग से उन्मुक्त भाषणों को नियमित किया जाता है। वाद-विवाद समाप्त होने के बाद विधेयक पर अध्यक्ष मतदान लेता है। मतदान के समय विरोधी दल के लोग ना तथा समर्थक हाँ कह कर चिल्लाते हैं। परन्तु कोई भी सदस्य उसका विरोध करके विभाजन द्वारा निर्णय की माँग कर सकता है। ऐसी माँग स्वीकृत होने पर दोनों पक्षों के सदस्य अलग-अलग कक्ष में जाकर खड़े हो जाते हैं। गणक उनकी गणना कर लेता है। जिसका पक्ष प्रबल होता है उसी का मत मान लिया जाता है। कभी-कभी किसी प्रस्ताव पर समान मत मिलते हैं। ऐसी दशा में लोक सभा का निर्वाचित सदस्य होने के नाते अध्यक्ष भी एक निर्णायक मत दे सकता है। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि अध्यक्ष अपना निर्णायक मत कतिपय नियमों की परिधि में रह कर देता है। अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार वह इसका प्रयोग नहीं कर सकता है।

ब्रिटिश संसद का मूल्यांकन—हम पहले ही इस तथ्य पर प्रकाश डाल चुके हैं कि ग्रेट ब्रिटेन की लोक सभा विश्व के लिए अनुकरणीय है। इसकी अनेक विधियो को संसार के विविध राष्ट्रों ने आत्मसात् कर लिया है। संसद अनेक रूपों में देश का प्रतिनिधित्व करती है। यह भी उल्लेखनीय है कि यह केवल अर्थ-नीति का ही नियोजन नहीं करती है, वरन् विविध प्रकार से देश को प्रगति-पथ पर ले जाती है। यद्यपि सभा में एक ही दल का बहुमत होता है परन्तु उसको किन्हीं निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। अतः संसद की वास्तविक सत्ता का महत्व उभर आता है। संक्षेप में संसद के विभिन्न उपादानों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) **वाद-विवाद का केन्द्र**—वाद-विवाद लोकतन्त्र का प्राण है, स्वतन्त्र मत-प्रकाशन लोकतन्त्र की आत्मा है परन्तु संसद वह उपयुक्त स्थल है जहाँ पर ये दोनों रह सकते है। संसद में मत-स्वातन्त्र्य की पूर्ण प्रतिष्ठा है। प्रत्येक सदस्य

अपने विचार व्यक्त कर सकता है। किसी सरकारी नीति की आलोचना की जा सकती है। संसदीय भाषणों तथा वाद-विवादों का महत्व जनता के लिए पर्याप्त उपयोगी होता है। उसी के आधार पर आगामी निर्वाचन की पृष्ठभूमि नियत होती है।

(२) **परीक्षण केन्द्र**—संसद में ही देश के महान् नेताओं की योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है। उसकी व्यावहारिक कुशलता, राजनीतिक नैपुण्य एवं देश के प्रति निष्ठा के भाव संसद में ही आँके जाते हैं। नेताओं को अपनी योग्यता एवं बुद्धिमत्ता का परिचय यहीं पर देना पड़ता है।

(३) **सूचना-प्राप्ति का साधन**—संसद में देश के अन्तर्गत होने वाली सभी घटनाओं की सूचनाएँ संगृहीत होती रहती हैं। कोई भी सदस्य किसी भी मन्त्री से अभीष्ट विषय की निश्चित एवं प्रामाणिक सूचना प्राप्त कर सकता है। प्रश्नों द्वारा सरकारी नीतियाँ भी प्रकाश में आ जाती हैं।

(४) **कार्यपालिका का नियन्त्रक**—संसदात्मक पद्धति में कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल के हाथों में निहित होती हैं। मन्त्रिमण्डल के नियन्त्रण का गुरुत्तर दायित्व संसद के हाथों में रहता है। संसद प्रश्न पूछ कर तथा विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव पास कर कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। इस प्रकार का नियन्त्रण कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाने में सहायक होता है। जैसा कि **प्रो० लॉस्की** ने लिखा है कि : "A Government that is compelled to explain itself under cross-examination will do its best to avoid the grounds of complaint. Nothing makes responsible Government so sure."

(५) **नेतृत्व का प्रशिक्षण केन्द्र**—इंगलैण्ड का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इंगलैण्ड के राजनैतिक रंग-मंच के सफल अभिनेता संसद के प्रभावशाली सदस्य रहे हैं। इस प्रकार संसद एक दृष्टि से नेतृत्व प्रशिक्षण-केन्द्र का कार्य करती है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार के संसद अनेक रूप से देश का उन्नयन करती है। वस्तुतः ब्रिटिश संसद ने विश्व को प्रभावित किया है तथा आज भी वह अनेक रूपों में अनुकरणीय है।

विधि-निर्माण की प्रक्रिया

प्रश्न—संसद में विधि-निर्माण की प्रक्रिया को अनुरेखित कीजिये।

विधि-निर्माण की प्रक्रिया—उपर्युक्त विवरणों से मतदान की प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ जाता है। परन्तु सदन में विधेयकों के पारण के क्या विधान हैं, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। विधेयकों की पारण-विधि के ज्ञान के पूर्व उनकी विभिन्न कोटियों को समझ लेना परमावश्यक है। विधेयकों को कई श्रेणियों में

विभक्त किया जा सकता है। अध्ययन की सुविधा के लिए विधेयकों के विभिन्न प्रकार निम्न रीति से उल्लिखित किये जा सकते हैं :—

(१) **सार्वजनिक विधेयक**—जो विधेयक सामूहिक हित को ध्यान में रखकर बनाये, प्रस्तुत एवं पारित किये जाते हैं, उनको सार्वजनिक विधेयक कहते हैं। उन विधेयकों में सम्पूर्ण जनता तथा देश के प्रत्येक भाग की उन्नति का भाव समाविष्ट रहता है।

(२) **व्यक्तिगत विधेयक**—ऐसे विधेयकों का सम्बन्ध किसी समुदाय विशेष से रहा करता है। इसमें व्यावसायिक, श्रमिक, शिक्षक एवं अन्यान्य समुदायों के हितों के लिएँ विधि-निर्माण का निर्देश होता है।

(३) **गैर सरकारी विधेयक**—गैर सरकारी विधेयक लोक सभा के किसी भी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इसमें भी सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत विधेयकों की विशेषताएँ समाविष्ट हो सकती हैं।

(४) **सरकारी विधेयक**—सरकारी विधेयक उसको कहते हैं जो बहुमत प्राप्त सत्तारूढ़ दल के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। सरकारी विधेयक पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(५) **आर्थिक विधेयक**—इस विधेयक के अन्तर्गत सरकार की अर्थनीति, करारोपण, व्यय विनियोग एवं सरकारी आय का निरूपण एवं तद्विषयक विधि-निर्माण करने का उल्लेख होता है।

(६) **सामान्य विधेयक**—इसके अन्तर्गत उन सामान्य विधेयकों की गणना की जाती है जिनका वित्त से किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होता है। प्रायः इन विधेयकों में सामान्य प्रशासन की नीतियों पर विधि-निर्माण का प्रसंग एवं आलेखन रहा करता है।

उपर्युक्त विवेचन से विधेयकों के प्रकार पर प्रकाश पड़ जाता है। अब विधेयकों की उत्पत्ति पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। विधेयकों की उत्पत्ति में दो प्रमुख कारण होते हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(क) **नतन नीति का अनुसरण**—यदि देश के प्रशासन में नूतन नीति की आवश्यकता का अनुभव होता है, तो उस विभाग से सम्बन्धित मन्त्री नई विधि बनवाने के लिए सदन में विधेयक प्रस्तुत करता है।

(ख) **वर्तमान विधि में संशोधन**—अनेक पुरातन विधि-विधान ऐसे होते हैं जो परिस्थितियों में परिवर्तन से अनुपयोगी हो जाते हैं अतः भावी प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के लिए उन विधियों में संशोधन की आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के हेतु नये विधेयकों की उत्पत्ति होती है।

विधि-निर्माण की प्रक्रिया—किसी भी विधेयक के निर्माण की प्रक्रिया सरल नहीं है। विधेयक को प्रारम्भिक रूप देने के लिए उसकी एक संक्षिप्त रूप-रेखा स्मृति-पत्र की भाँति तैयार कर ली जाती है। विभाग का मन्त्री उस रूप-रेखा को अपनी मन्त्रि-परिषद् की बैठक में विचारार्थ प्रस्तुत करता है। यदि मन्त्रि-परिषद् की सम्मति मिल जाती है, तो उस स्मृति-पत्र को वृहत् एवं प्रौढ़ रूप प्रदान किया जाता है। राजकोष विभाग के अन्तर्गत एक विधि विशेषज्ञ वकीलों का भी विभाग है। ये वकील लोग उस स्मृति-पत्र की संक्षिप्त रूप-रेखाओं को बड़ा रूप प्रदान करते हैं। वास्तव में यह कार्य सरल नहीं होता है। प्रत्येक धारा का स्पष्टीकरण किया जाता है। विधेयक की भाषा सुस्पष्ट, सरल, सुबोध व सुसंगत रखने का प्रयास किया जाता है। इस सतर्कता के कारण विधेयक को समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। जब विधेयक का उक्त प्रौढ़ रूप तैयार हो जाता है, तब उसे मंत्रि-परिषद् में विचार-विमर्श के लिए रक्खा जाता है। मन्त्रि-परिषद् की स्वीकृति मिलने पर वह विधेयक तत्सम्बन्धित मन्त्री द्वारा सदन की मेज पर रक्खा जाता है। सदन उस पर विचार करता है तथा उसे पारित या अस्वीकृत करता है।

विधि-निर्माण के पाँच सोपान—सदन में विधेयक प्रस्तुत होने के पश्चात् उसे कई प्रक्रमों में से निकलना पड़ता है। विधि-निर्माण की प्रक्रिया भी बड़ी रोचक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जब तक विधेयक पारित नहीं होता है तब तक उसे विधि नहीं कह सकते हैं। पारण के पूर्व विधेयक तथा पश्चात् में वही विधि का रूप धारण कर लेता है। ऊपर विधेयक को तैयार करने की विधा का उल्लेख किया जा चुका है। विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। तब उस पर विवाद की शृङ्खला उठ खड़ी होती है, किन्तु विवाद पूर्व भी कुछ आवश्यक नियमों का पालन किया जाता है। उन नियमों को इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है।

प्रथम वाचन—सदन की दैनिक कार्यवाही में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि कार्यक्रम में प्रस्तुत किये जाने वाले विधेयक का निर्देश किया जाता है। विधेयक प्रस्तुत करने की केवल सूचना मात्र दे दी जाती है। इसके साथ ही विधेयक के लिए जो समय निर्धारित किया जाता है, उसमें लिपिक उसका शीर्षक मात्र पढ़ देता है। इस साधारण प्रक्रिया से ही विधेयक का प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है। यदि प्रस्तावक चाहे तो उस पर अपना संक्षिप्त भाषण देकर उसके आवश्यक उपादानों तथा तथ्यों का स्पष्टीकरण कर सकता है। इसके साथ विरोधी पक्ष भी अपना विरोध प्रकट कर सकता है। प्रथम वाचन में केवल संक्षिप्त पद्धति द्वारा ही काम निकाल लिया जाता है, परन्तु प्रस्तावक सदन की अनुमति से विशद

विवेचन भी कर सकता है तथा विरोधी दल भी उस पर पर्याप्त वाद-विवाद कर सकता है। किन्तु यह सब इस समय प्रथम वाचन में नहीं किया जाता है।

द्वितीय वाचन—प्रथम वाचन के निर्धारित दिवसों के बाद विधेयक पुनः सदन में लाया जाता है। इस समय विधेयक के स्थूल तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर वाद-विवाद होता है। इसी समय विधेयक के औचित्य एवं अनौचित्य पर तथा उसकी उपादेयता पर प्रकाश डाला जाता है। विधेयक के प्रस्तोता पक्ष के सदस्य उसकी उपादेयता का सटीक प्रमाण देते हैं। किन्तु विरोधी दल उनके प्रमाणों का खण्डन करते हैं। कभी-कभी विरोधी पक्ष द्वितीय वाचन न होने का प्रस्ताव करता है अथवा उसे छः मास बाद इसी समय द्वितीय वाचन के हेतु प्रस्तुत करने की माँग करता है। छः मास बाद प्रस्तुत करने की माँग भी विधेयक के प्रति अस्वीकृति की माँग होती है; क्योंकि छः मास बाद लोक सभा का सत्र ही समाप्त हो जाता है।

समिति प्रक्रम—सदन के आन्तरिक संगठन में समितियों का उल्लेख किया जा चुका है। अतः विधेयक के समाप्त होने के बाद उसे किसी समिति के पास विचारार्थ भेजा जाता है। समिति पूर्ण सूक्ष्मता के साथ उस विधेयक के पूर्वोपार तथ्यों पर विचार करती है। गम्भीर विवाद के बाद उसमें आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन का प्रस्ताव करती है। उस प्रस्ताव के साथ ही विधेयक पुनः सभा के पास वापस भेज दिया जाता है।

विवरण प्रक्रम—इस दिशा में विधेयक की प्रत्येक धारा पर पुनः सूक्ष्मता पूर्वक विचार किया जाता है। इस समय पर कोई भी सदस्य किसी भी धारा पर संशोधन का प्रस्ताव कर सकता है। संशोधन पर विवाद होता है तथा निर्णय भी लिया जाता है। समस्त संशोधनों एवं परिवर्तनों के साथ सम्पूर्ण विधेयक पर पुनः सामूहिक मतदान होता है। यदि सभा में विधेयक के अनुकूल मत रहता है, तो उसे पारित समझा जाता है। इस प्रकार अपने सम्पूर्ण विवरणों के सहित विधेयक तृतीय वाचन के लिये भेजा जाता है।

तृतीय वाचन—अपने सम्पूर्ण संशोधन के साथ विधेयक सभा में तृतीय वाचन के लिये प्रस्तुत किया जाता है। इस समय किसी महत्वपूर्ण संशोधन का प्रस्ताव नहीं किया जाता है। केवल सामान्य त्रुटियों अथवा भाषा सम्बन्धी अस्पष्टताओं का ही परिवर्तन किया जाता है। विरोधी पक्ष इस समय भी उक्त विधेयक का प्रबल विरोध कर सकता है। यदि संयोगवश तृतीय वाचन में विधेयक अस्वीकृत हो जाय तो सम्पूर्ण विधेयक व्यर्थ हो जाता है। इसके साथ ही पूर्वकृत प्रयासों पर भी हिमपात हो जाता है। किन्तु ऐसी स्थिति शायद कभी उत्पन्न होती हो। प्रायः

तृतीय वाचन में विधेयक पारित हो जाता है। अस्वीकृति की अधिक सम्भावना द्वितीय वाचन में ही रहा करती है।

द्वितीय सभा में विधेयक-पारण—प्रथम सभा से विधेयक पारित करके उसको हाउस आफ लार्ड्स में भेजा जाता है। हाउस आफ लार्ड्स उस विधेयक पर गम्भीरतापूर्वक विचार करता है। यदि उसमें आवश्यकता होती है, तो संशोधन भी किया जाता है। 'हाउस आफ लार्ड्स' चाहे तो उस विधेयक को अस्वीकृत करके लोक सभा के पास पुनः भेज सकता है। प्रायः सामान्य विधेयकों पर लार्ड सभा द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर विचार करके लोक सभा उसमें यथावश्यक संशोधन कर देती है। इस प्रकार विधेयक पारित हो जाता है। यदि कहीं मतभेद तीव्र होता है, तो १६११ तथा १६४६ ई० के अधिनियम द्वारा लोक सभा लार्ड सभा के अधिकारों का उल्लंघन कर देती है। परन्तु जब कभी सामान्य विधेयक लार्ड सभा में प्रथम बार पारित किया जाता है तथा लोक सभा द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है, तो लार्ड सभा लोक सभा का उल्लंघन नहीं कर सकती है। इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि वित्त विधेयक पर लार्ड सभा का कोई भी अधिकार नहीं है। लार्ड सभा चाहे उसको पारित करे अथवा न करे, एक मास की अवधि के बाद वह साम्राज्ञी की स्वीकृति पाकर विधि का रूप ग्रहण कर लेता है।

साम्राज्ञी की स्वीकृति—दोनों सभाओं द्वारा पारित विधेयकों को साम्राज्ञी की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। बिना साम्राज्ञी की स्वीकृति के कोई भी विधेयक विधि नहीं बन सकता है। यद्यपि साम्राज्ञी को विधेयक अस्वीकृत करने के लिये निषेधाधिकार उपलब्ध है। परन्तु दीर्घकाल से उनका उपयोग न होने के कारण यह अभिसमय बन गया है कि सम्राट किसी विधेयक को अस्वीकार नहीं करेगा।

वास्तव में हस्ताक्षर करने का कार्य मात्र औपचारिक है। अब तो हस्ताक्षर का कार्य साम्राज्ञी के नाम पर एक समिति ही करती है।

उपर्युक्त विवरणों से लोक सभा में विधि-निर्माण के विभिन्न पंच सोपानों पर प्रकाश पड़ जाता है। सभी विधेयक इसी प्रकार सदन में प्रस्तुत एवं पारित भी किये जाते हैं। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि व्यक्तिगत विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया में थोड़ा-सा अन्तर है। अतः उसको भी समझ लेना आवश्यक है।

व्यक्तिगत विधेयक—पहले ही इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा चुका है कि व्यक्तिगत विधेयकों का सम्बन्ध किसी संस्था विशेष से होता है। यही कारण है कि उनको व्यक्तिगत विधेयक के नाम से पुकारा जाता है। व्यक्तिगत संस्थाओं, व्यवसायी एवं व्यापारी वर्ग के लोग अपने हितों की विधि बनवा सकते हैं। इसके लिए उनको एक आवेदन-पत्र देना पड़ता है। इस आवेदन-पत्र के साथ प्रस्तुत किये जाने

वाले विधेयक की एक मूल प्रति भी नत्थी कर दी जाती है। विधेयक में प्रस्तावित विधि-निर्माण की उपयोगिता तथा उसकी प्रतिकूलता किस पर पड़ेगी, इसका भी उल्लेख कर दिया जाता है। आवश्यक आँकड़े, मानचित्र तथा तत्सम्बन्धित अन्यान्य प्रमाण-पत्र भी संलग्न कर दिये जाते हैं। यदि व्यक्तिगत विधेयक के आवेदन-पत्र के साथ उपयोगी वस्तुओं के निर्देश तथा प्रमाण-पत्र आदि नहीं होते हैं, तो उन पर विचार नहीं किया जाता है। संसद में विधेयक का आवेदन-पत्र पहुँचने पर वह व्यक्तिगत विधेयक परीक्षक के पास भेज दिया जाता है। उक्त परीक्षक आवेदन-पत्र की पूर्व परीक्षा करने के बाद उसके औचित्य को प्रमाणित करता है। इसी प्रमाणी-करण के पश्चात् यह विधेयक किसी भी सभा में प्रस्तुत किये जाते हैं। बहुधा लार्ड सभा में ही ऐसे विधेयकों को प्रस्तुत करने के बाद प्रथम तथा द्वितीय वाचन सम्पन्न किये जाते हैं। इन प्रक्रियाओं के अनन्तर यह विधेयक व्यक्तिगत विधेयक समिति के पास भेज दिये जाते हैं। समिति उसके सभी तथ्यों पर विचार करती है। यदि विधेयक निर्विरोध सिद्ध हो जाता है तो उसे निर्विरोध विधेयक समिति के पास भेज दिया जाता है। इस समिति के सदस्य उक्त विधेयक की पूर्ण परीक्षा करते हैं। किन्तु समिति में वे ही सदस्य नियुक्ति किये जाते हैं जो विशेषज्ञ तथा निष्पक्ष होते हैं अन्यथा विधेयक के साथ पक्षपात करने का परिणाम बड़ा ही घातक सिद्ध हो सकता है। इस समिति के सदस्य विधेयक के गुण-दोषों का विवेचन करते हैं। उस पर न्यायालय की भाँति विचार करते हैं। केवल यही नहीं पक्ष-विपक्ष के तर्क-वितर्क तथा साक्षियों का आलम्बन लेते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसे विधेयकों पर बहस करने वाले वकीलों का एक समुदाय ही अलग है। दोनों पक्षों के वकील अपने पक्ष का युक्ति-संगत प्रमाणीकरण करने की चेष्टा करते हैं अन्त में सभी प्रमाणों की परीक्षा करके समिति अपना निर्णय देती है। यह निर्णय संसद के विचारार्थ रक्खा जाता है। यदि निर्णय सरकारी हितों के अनुकुल होता है, तो उसको स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा उसको अस्वीकृत घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार विधेयक प्रथम सभा में पारित करके द्वितीय सभा में भेजा जाता है। दोनों स्थानों से पारित होने पर विधेयक सम्राट की स्वीकृति पाकर देश की विधि बन जाता है।

व्यक्तिगत विधेयक के पारण में उसकी उपयोगिता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये विधेयक राजनीतिक प्रभाव एवं दलीय स्वार्थ-परता से परे रहते हैं। इस विधान द्वारा प्रत्येक प्रगतिशील संस्था अपने हितों के अनुकूल विधि-निर्माण करा सकती है। उसे केवल सरकार के आश्रय पर ही नहीं बैठना पड़ता है। व्यक्तिगत विधेयक पारित करने के लिये सभी के लिये द्वार खुला है। परन्तु ऐसे विधेयकों को पारित कराने में समय तथा धन का व्यय पर्याप्त मात्रा में किया जाता है।

गैर सरकारी विधेयक—संसद में अनेकों गैर सरकारी विधेयक भी प्रस्तुत किये जाते हैं। गैर सरकारी विधेयक विरोधी दल द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। गैर सरकारी विधेयकों के लिये समय बहुत ही कम मात्रा में मिल पाता है। प्रति सप्ताह का शुक्रवार का दिन गैर सरकारी विधेयक के लिये निर्धारित कर दिया गया है। परन्तु यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अनेक विरोधी सदस्य अपने-अपने विधेयक प्रस्तुत करना चाहते हैं परन्तु सबको समय नहीं मिल पाता है, क्योंकि एक सत्र में लगभग २० शुक्रवारों की संख्या होती है। उनमें से एक शुक्रवार को विधेयक प्रस्तुत करने तथा दूसरा शुक्रवार उसके प्रस्तावों पर विचार करने के लिए होता है। इस प्रकार विधेयक प्रस्तुत करने के लिये केवल १० शुक्रवार ही मिल पाते हैं, अतः इतने अल्प समय में सभी सदस्य अपने विधेयक प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। फलतः सत्र के प्रारम्भ में ही विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्यों के नाम की गुप्त चिट्ठियाँ डाली जाती हैं। जिस क्रम से नाम निकलते जाते हैं उसी क्रम से सदस्यगण अपना विधेयक प्रस्तुत करते हैं। निर्धारित संख्या समाप्त होने पर जिन सदस्यों के नाम रह जाते हैं उनके विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं।

विधयकों के प्रस्तुत होने में कोई गौरव नहीं है अपितु गौरव तो उनके पारित होने में होता है। गैर सरकारी विधेयक को पारित करने का सत्तारूढ़ दल की सहानुभूति एवं समर्थन उक्त विधेयक को प्राप्त होता है, उसे पारित होने का अवसर मिल जाता है अन्यथा विधेयक का द्वितीय वाचन ही नहीं हो पाता है। सरकारी बहुमत के विरोध में यदि कोई विधेयक पारित हो जाता है, तो इससे सरकार में अविश्वास प्रकट होता है। इंगलैण्ड की सत्तारूढ़ सरकार ऐसे अवसर पर त्याग-पत्र दे देती है।

विधि-निर्माण में मन्त्रि-परिषद् का योग—ब्रिटिश विधान मण्डल का अध्ययन करते समय इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक है कि वैधानिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यही कहा जाता है कि संसद तथा सम्राट की स्वीकृति से विधि-निर्माण किया जाता है। किन्तु व्यवहार में यह सिद्धान्त बिल्कुल नाममात्र को लागू होता है। ब्रिटेन की मन्त्रि-परिषद् ही वास्तविक विधि-निर्मात्री होती है। क्योंकि सत्तारूढ़ दल का प्रधान मन्त्री अपनी मन्त्रि-परिषद् बनाता है। अतः सभी कार्यक्रमों तथा भावी विधेयकों को प्रथम स्वीकृति मन्त्रि-परिषद् ही देती है। बिना इसकी स्वीकृति के कोई भी सरकारी विधेयक सदन में प्रस्तुत ही नहीं किया जा सकता है। मन्त्रि-परिषद् द्वारा समर्थित विधेयक तो अवश्य ही पारित हो जाता है क्योंकि सरकार का बहुमत रहता है। बहुमत के बल पर ही मन्त्रि-परिषद् कुछ भी कार्य कर सकती है। शेष विरोधी दल के सदस्य तो नाममात्र के विधायक हैं,

वे केवल आलोचना कर सकते हैं अथवा अपना गैर सरकारी विधेयक प्रस्तुत मात्र कर सकते हैं। उसके पारित होने में कोई सम्भावना नहीं रहती है। अतः यह कहा जा सकता है कि मन्त्रि-परिषद् विधि-निर्मात्री संस्था है। लोक सभा पर उसी का नियन्त्रण रहता है। किसी भी समय वह संसद को भंग करवा कर नये आम चुनाव करवा सकती है।

संसदीय वित्त-नियन्त्रण

प्रश्न—ग्रेट ब्रिटेन की संसद वहाँ की वित्तीय व्यवस्था पर किस भाँति अपना नियंत्रण रखती है ?

संसदीय वित्त-नियंत्रण—प्रत्येक प्रजातन्त्रीय सरकार देश के वित्त पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करती है। लोक सभा इसका अपवाद नहीं है। इसकी अधिकार-शक्ति तो वित्त-नियमन से भी बड़ी है। पूर्व के राजाओं को प्रशासन-कार्यों के लिए धन-स्वीकृति पर लोक सभा ने पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया। सम्राट, संसद की स्वीकृति के बिना न तो कर ही लगा सकते थे और न व्यय करने में पूर्ण स्वतन्त्र थे। फलतः पुरातन काल से ही लोक सभा ने देश के वित्त नियोजन का पूर्ण नियमन कर रक्खा है। समस्त सरकारी विभागों को प्रशासनिक कार्यों का सम्पादन करने के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु अर्थ-स्वीकृति केवल संसद द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार धन के माध्यम से सरकार पर संसद का एकमात्र अधिकार रहता है। वे निम्नलिखित हैं :

(१) **अर्थ स्वीकृति**—संसद ही अन्तिम रूप से अर्थ-स्वीकृति करती है। विभिन्न विभागों को विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने के लिये एक निश्चित राशि प्रदान करना संसद का ही कार्य है। इस प्रकार अर्थ की स्वीकृति से संसद सभी विभागों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है।

(२) **आय के स्रोतों का विधान**—संसद ही सरकारी आय के स्रोतों पर विचार करती है तथा कर लगाने एवं कर प्राप्त करने की विधा का निर्धारण भी संसद के ही आधीन है। क्योंकि आय के साधनों द्वारा ही किसी सरकार का प्रशासन-तन्त्र सुनियोजित किया जा सकता है। आय के अभाव में सरकार ही अव्यवस्थित हो जाती है।

(३) **व्यय-नियोजन**—प्रति वर्ष सरकार का व्यय संसद द्वारा नियोजित किया जाता है। किसी विभाग में कितना व्यय तथा किस रीति से किया जायेगा, इसका अन्तिम निर्णय संसद ही किया करती है।

(४) **आय-व्यय की परीक्षा**—सभी विभागों द्वारा आय तथा व्यय का निरीक्षण भी किया जाता है। आडीटर जनरल के नियन्त्रण में संसद इस महत्वपूर्ण

कार्य का सम्पादन कराती है। इसी कारण से किसी भी विभाग में अनियन्त्रित भ्रष्टाचार नहीं हो सकता है।

संसदीय अर्थ-प्रबन्ध—संसदीय अर्थ-प्रबन्ध विशिष्ट रूप से किया जाता है। साधारण गृहस्थ जिस प्रकार अपनी निश्चित आय के अनुसार व्यय की विभिन्न मदों को निर्धारित करता है, सरकार ठीक उसके विपरीत दिशा में चलती है। सरकार के अर्थ-प्रबन्ध में सर्वप्रथम व्यय की विभिन्न मदों का उल्लेख तथा उन पर व्यय होने वाली पूर्ण धनराशि का निर्धारण किया जाता है। व्यय का अनुमान बन जाने पर सरकार अपनी आय के विभिन्न स्रोत तथा उनसे उपलब्ध होने वाली धन-राशि को एकत्र करती है। यदि उपलब्ध आय व्यय से कम होती है, तो उसके बढ़ाने के लिये अन्य साधनों पर विचार किया जाता है अथवा वर्तमान कर इत्यादि में अधिक वृद्धि की जाती है। प्रायः सरकार का व्यय अधिक ही होता है, क्योंकि व्यय का अधिक होना प्रशासन के लिए हितकर होता है। व्यय के क्षेत्र में कटौती नहीं की जा सकती है क्योंकि व्यय घटाने का तात्पर्य प्रशासन द्वारा सम्भावित प्रगति को रोकना ही होगा। सेना, शिक्षा, लोक-कल्याण एवं स्वास्थ्य आदि विभिन्न उपयोगी तत्वों में कटौती करके देश की प्रगति में व्याघात उत्पन्न करना किसी भी सरकार को इष्ट नहीं है। परन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं समझना चाहिये कि व्यय की मद बिल्कुल नहीं घटाई जा सकती है। सामान्य अथवा आंशिक परिवर्तन सर्वदा सम्भव है। किन्तु किसी एक विभाग का पूरा व्यय कम नहीं किया जा सकता है।

ग्रेट ब्रिटेन की सरकार का वित्तीय वर्ष प्रथम अप्रैल को प्रारम्भ होता है तथा ३१ मार्च को समाप्त होता है। इस पूरे वर्ष के लिए ही संसद अपने आय-व्यय का नियोजन करती है। प्रति वर्ष व्यय तथा आय के साधनों में आंशिक परि-वर्तन किया जाता है। परन्तु कतिपय मदें ऐसी होती हैं जिनको पूर्ववत् ही व्यवस्थित रहने दिया जाता है। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय ऋण, सिविल लिस्ट, न्यायाधीशों का वेतन, पेन्शन, संसदीय निर्वाचनों का व्यय तथा संचित निधि पर अन्य भार आदि वार्षिक आय-व्यय पत्रक (बजट) में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। इन्हें केवल पृथक रूप से निर्दिष्ट मात्र कर दिया जाता है। इन मदों पर संसद के मतदान की आवश्यकता नहीं होती है।

आय-व्यय पत्रक तैयार करने की विधि—ग्रेट ब्रिटेन का राजकोष विभाग आय-व्यय-पत्र को तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस आय-व्यय-पत्र को नये वित्तीय वर्ष प्रारम्भ होने के ६-७ मास पूर्व ही तैयार कराने का आदेश दिया जाता है। राजकोष विभाग सभी विभागों के पास अपने-अपने विभागों का आय-

व्यय-पत्र तैयार करने के लिये आदेश भेज देता है। उसके आदेशानुसार सभी विभाग अपने आय-व्यय-पत्र को तैयार करने का प्रयास करते हैं। यदि कोई विभाग नये व्यय का प्रस्ताव करता है, तो उसको व्यय के पक्ष में सटीक प्रमाण एवं तर्क देने पड़ते हैं अन्यथा राजकोष विभाग उसको अस्वीकृत कर देगा। किसी भी नये व्यय के प्रस्ताव पर राजकोष विभाग की स्वीकृति आवश्यक है। यदि यह स्वीकृति नहीं मिलती है, तो विभागीय प्रतिवेदन-पत्र मन्त्रि-परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यदि मन्त्रि-परिषद् उसे उचित समझती है, तो स्वीकृति प्रदान कर सकती है। किन्तु सामान्यतया राजकोष विभाग के विपरीत चलने का साहस मन्त्रि-परिषद् नहीं करती हैं। यदि नये व्यय की स्वीकृति राजकोष विभाग नहीं देता है, तो वह व्यय ही समाप्त करने का प्रयास किया जाता है।

प्रत्येक विभाग अपने आय-व्यय के आँकड़े दो या तीन वर्षों के आँकड़ों के अनुसार करते हैं। व्यय का विस्तृत अनुमान-पत्र १५ जनवरी तक राजकोष विभाग के पास भेज देता है। यहाँ पर प्रत्येक विभाग के आय-व्यय-पत्र की पूर्ण जाँच की जाती है। राजकोष विभाग अनेक प्रकार के सम्भावित व्ययों की मदों में कटौती भी कर देता है। इस कार्य के लिये तत्सम्बन्धी विभागों से विचार-विमर्श भी चला करता है। विचार हो चुकने के बाद सभी विभागों के व्यय तथा आय को पृथक्-पृथक् जोड़ लिया जाता है। जोड़ने के बाद आय-व्यय को संतुलित करने का प्रयास किया जाता है। यदि व्यय की मात्रा अधिक होती है, तो आय के कुछ नये साधनों पर विचार किया जाता है। आय बढ़ने पर या तो उसे घटाया जाता है अथवा कुछ नये व्यय परक कार्यों की सम्भावना व्यक्त की जाती है। इस प्रकार राजकोष विभाग ही पूर्ण रीति से आय-व्यय-पत्र को तैयार कर रखता है तथा उसको वित्त मन्त्री को सौंप देता है। वित्त मन्त्री इस पत्र को मन्त्रि-परिषद के सामने विचारार्थ प्रस्तुत करता है। मन्त्रि-परिषद भी अनेक रूपों से उस पर विचार करके उसे लोक सभा में प्रस्तुत करने योग्य प्रमाणित कर देता है।

लोक सभा द्वारा विचार—जनवरी के अन्तिम सप्ताह तक आय-व्यय-पत्र का व्यय वाला भाग पहले लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लोक सभा इस पर विचार करने के लिए सम्पूर्ण सभा की समिति में बैठती है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि व्यय की मदों पर विचार करते समय सभा को आदान समिति के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति में प्रत्येक विभाग का मन्त्री अपने विभाग के व्यय-अनुमान-पत्र को प्रस्तुत करता है। उस समय उस पर बहस की जाती है। विरोधी दल के सदस्य उस विभाग के प्रति अपना असन्तोष प्रकट करने के लिए उस विभाग के मन्त्री के वेतन में कटौती का प्रस्ताव पास करते हैं। इस कटौती के प्रस्ताव से वे

उसके विभाग की अव्यवस्था, अपव्यय एवं प्रशासनिक भ्रष्टता का निर्देश करते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रीति से विभाग की त्रुटियों पर विरोधी दल प्रकाश डालता है। विभागीय मन्त्री या तो विरोधी दल की आलोचनाओं को निरर्थक सिद्ध करता है अथवा प्रस्तावित कटौती करने तथा विभागीय अव्यवस्था को दूर करने का आश्वासन प्रदान करता है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि कटौती का प्रस्ताव सरकार कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती है क्योंकि इसके स्वीकरण से सरकार में अविश्वास का प्रदर्शन होता है। अतः सरकार पूर्ण सावधानी से कार्य करती है। इसी प्रकार विभागों के व्यय-पत्र पर बहस होती जाती है तथा आदान समिति उनको स्वीकार करती जाती है। ग्रेट-ब्रिटेन में व्यय-स्वीकृति के लिए कुछ दिवसों का समय निर्धारित किया गया है। यह समय लगातार नहीं मिला करता है अपितु ४-५ मास की अवधि में बिखरा रहता है।

उपर्युक्त विधि से ही सरकारी व्यय के मदों को स्वीकृत किया जाता है। मन्त्रीगण सम्राट के नाम पर अधिक से अधिक धनराशि का प्रस्ताव करते हैं। वहाँ यह उल्लेखनीय है कि कोई भी साधारण सदस्य व्यय में कटौती का प्रस्ताव नहीं कर सकता है। वृद्धि करने का एकमात्र अधिकार शासक दल को ही प्राप्त है। विरोधी दल के सदस्य व्यय में कमी की माँग कर सकते हैं। यदि सरकार उचित समझती है, तो उनकी माँग को स्वीकार कर लेती है।

व्यय के विभिन्न मदों की स्वीकृति के बाद ही किसी निश्चित दिन आय का अनुमान-पत्र लोक सभा में वित्त मन्त्री प्रस्तुत करता है। आय-पत्र भी राजकोष विभाग के निर्देशन में कराया जाता है। इसमें आय के विभिन्न स्रोत तथा उनकी दरों का उल्लेख किया जाता है। यह पत्र भी सम्पूर्ण सभा की समिति के सामने प्रस्तुत किया जाता है। वस्तुतः यह दिवस बड़ा ही महत्वपूर्ण होता है। उस दिन को 'बजट-दिवस' कहते हैं। विशेषकर व्यापारी वर्ग इस दिवस की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है; क्योंकि सरकार की आय करों द्वारा होती है। अतः किन वस्तुओं पर अधिक कर है तथा किन पर कम है इससे व्यापारी अपने वर्ष भर की आय का अनुमान लगाते हैं। आय बजट की सभी बातों को पूर्णतया गोपनीय रखा जाता है। यदि कहीं कोई तथ्य प्रकट हो जाता है, तो उसके फलस्वरूप अर्थ-मन्त्री को पदत्याग करना पड़ता है। अर्थ-मन्त्री उस बजट की संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत कर देता है। शेष पूरे बजट की प्रतियाँ सदस्यों को बाँट दी जाती हैं। बजट प्रस्तुत करने तथा समिति द्वारा स्वीकृति मिलने के बाद ही तदनुकूल अर्थ-नीति का अनुसरण प्रारम्भ हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसी प्रस्तावित दर के अनुसार करों की वसूली आदि प्रारम्भ की जाती है।

आय-व्यय विधेयक—जब आय तथा व्यय दोनों पर पूर्ण विचार हो जाता है, तो उसे सामान्य विधेयकों की ही भाँति तीन वाचनों में पारित किया जाता है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि ये विधेयक स्थायी समितियों के पास नहीं भेजे जाते हैं क्योंकि सम्पूर्ण सभा की दो समितियाँ आदान समिति तथा साधन समिति इन पर विचार कर लेती है। फलतः लोक सभा में इसे पारित करके द्वितीय सदन 'हाउस ऑफ लार्ड्स' में भेज दिया जाता है। हाउस ऑफ लार्ड्स वित्त-विधेयक को न तो अस्वीकार कर सकता है और न कोई परिवर्तन ही कर सकता है। अतः यह चाहे स्वीकार करे अथवा न करे, एक मास की अवधि के बाद उक्त विधेयक सम्राट की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। सम्राट की स्वीकृति पर वह विधि बन जाता है।

उपर्युक्त प्रकार से वित्त विधेयक संसद में पारित किये जाते हैं। संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि के व्यय पर ब्रिटेन का राजकोष विभाग पूर्ण नियन्त्रण में रहता है। यदि किसी विभाग में प्रस्तावित धनराशि से कम व्यय होता है, तो उक्त विभाग राजकोष की स्वीकृति के बिना एक पैसा अतिरिक्त व्यय नहीं कर सकता है। इसी प्रकार यदि प्रस्तावित धनराशि से अन्य व्यय करने की आवश्यकता पड़ती है, तो राजकोष विभाग की स्वीकृति के साथ ही पार्लियामेंट से पूरक माँग की जाती है। पूरक माँग के पूर्व राजकोष विभाग की अनुमति आवश्यक है अन्यथा पार्लियामेंट संसद में पूरक माँग प्रस्तुत नहीं की जा सकती है।

संसद सभी विभागों के व्यय का नियन्त्रण करने के लिए अपने कर्मचारी नियुक्त करती है। इस क्षेत्र में प्रधान वित्तदाता तथा लेखापरीक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है। इनको मन्त्रि-परिषद की अनुमति से सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता है। इस अधिकारी का मुख्य कार्य धनराशि की स्वीकृति तथा उसकी जाँच करना है। समय-समय पर राजकोष विभाग इसके पास विभागीय आवश्यकताओं के अनुसार धनराशि की माँग भेजता है। यहाँ पर लोक सभा द्वारा पारित आय-व्यय-पत्र के अनुसार मिलान करने के उपरान्त प्रार्थित धन प्रदान की जाती है। राजकोष विभाग उसका वितरण विभिन्न विभागों में कर देता है। इसी प्रकार प्रधान लेखा परीक्षक के रूप में सभी विभागों के व्ययों की परीक्षा करता है। संदिग्ध व्यय पर पूछताछ की जाती है। उसके बाद प्रतिवेदन-पत्र तैयार कराया जाता है। उसमें संदिग्ध व्यय का उल्लेख कर दिया जाता है। इस प्रकार संसद स्वयं ही सब प्रकार के आय-व्यय पर नियन्त्रण स्थापित करती है।

एक सार्वजनिक लेखा समिति भी ग्रेट ब्रिटेन में आय-व्यय की परीक्षा के लिए है। यह समिति प्रधान लेखा परीक्षक की सहायता से कार्य करती है। इस

समिति का अध्यक्ष प्रायः विपक्षी दल का कोई नेता बनाया जाता है। यह पूर्ण कठोरता के साथ कार्य करता है तथा सम्भावित त्रुटियों एवं संदिग्ध बातों की पूर्ण परीक्षा भी करता है। विभागीय त्रुटि पाने पर उन अधिकारियों को बुलाकर प्रत्यक्ष रूप से शंका समाधान कराया जाता है। अन्त में यह समिति संसद के सामने अपना प्रतिवेदन-पत्र प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार सरकार आगामी वर्ष में त्रुटियों से बचने का उपाय करती है।

ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था में गुण-दोष—ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण नियंत्रण अब लोक सभा के हाथों में ही आ गया है। लोक सभा द्वारा प्रस्तावित आय-व्यय में कोई भी संशोधन नहीं करा सकता है। लार्ड सभा इस क्षेत्र में बिल्कुल ही प्रभावहीन हो गई है। सम्राट भी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इसलिए संसद ही एकमात्र सम्प्रभु बन गई है। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था में कतिपय दोष तथा गुण भी हैं जिनको जान लेना अत्यावश्यक है। ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था के गुण-दोषों को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है :—

ब्रिटिश अर्थ-व्यवस्था के गुण

(१) **राजकोष विभाग द्वारा नियन्त्रण**—ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था राजकोष विभाग द्वारा नियन्त्रित की जाती है। समस्त विभाग अपना विभागीय आय-व्यय पत्र प्रथमतः इसी के पास भेजते हैं। यहाँ पर इसकी ठीक प्रकार से जाँच की जाती है। आय तथा व्यय को पृथक्-पृथक् जोड़कर उसे संतुलित करने का प्रयास किया जाता है। एक ही विभाग द्वारा नियोजित होने के कारण उसमें सूत्रबद्धता आ जाती है।

(२) **मंत्रि-परिषद् का उत्तरदायित्व**—ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व मन्त्रि-परिषद पर है। प्रशासन तथा उसके संचालन के लिए अनन्तर यही उत्तरदायी है। मन्त्रि-परिषद के विभिन्न मन्त्री अपने-अपने विभागों के आय-व्यय-पत्र को तैयार कराते हैं। अतः उसमें किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना नहीं रहती है।

(३) **कटौती के प्रस्ताव**—सदन में आय-व्यय विधेयक प्रस्तुत होने पर कोई भी सदस्य व्यय के मद में वृद्धि का प्रस्ताव नहीं कर सकता है। कटौती के प्रस्ताव करने के अतिरिक्त अधिकार किसी को उपलब्ध नहीं है।

(४) **अर्थ-नीति में हस्तक्षेप का अभाव**—ब्रिटेन की अर्थ-नीति में किसी को भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। जहाँ पर सदस्यगण अर्थ-नीति में हस्तक्षेप करते हैं, वहाँ की अर्थ-व्यवस्था एक सुनिश्चित दिशा में गतिमान नहीं हो पाती है, उसमें बाधा उत्पन्न होती है। परन्तु ब्रिटेन में किसी भी सदस्य को ऐसा अधिकार

नहीं दिया गया है । अधिकांश कटौती के प्रस्ताव वापस कर लिये जाते हैं । इस प्रकार सरकार की अर्थ-नीति असंतुलित नहीं होने पाती है ।

ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था के दोष

ग्रेट ब्रिटेन की अर्थ-नीति यद्यपि आदर्श तथा अनुकरणीय मानी गई है, तथापि इसमें निम्नलिखित कतिपय दोष भी हैं ।

(१) **विभागीय अज्ञानता**—ग्रेट ब्रिटेन के जिस विभाग द्वारा आगामी वर्ष के लिए आय-व्यय-पत्र तैयार किया जाता है, वह विभाग देश की वास्तविक अर्थ-नीति एवं उसकी स्थिति से अनभिज्ञ रहता है । राजकोष विभाग विभिन्न विभागों की रिपोर्टों के अनुसार ही अपनी अर्थ-नीति का नियोजन करता है । अतः यह नितान्त त्रुटिपूर्ण है ।

(२) **समयाभाव**—ऊपर इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि व्यय पर विचार करने के लिए केवल २६ दिन ही निर्धारित किये गये हैं । अतः एक देश की नीति का निर्धारण करने के लिए यह समय अवश्य ही कम है । यही कारण है कि सभी मदों पर विचार ही नहीं किया जा सकता है । केवल प्रमुख मदों पर विचार करने के बाद शेष को वैसा ही मान लिया जाता है ।

(३) **सभा की विशालता**—आय-व्यय की सभी मदों पर पूर्ण विचार सभा की विशालता के कारण नहीं हो पाता है । सम्पूर्ण सभा की समिति के सदस्य सभी बातों पर विचार नहीं कर पाते हैं क्योंकि अधिकांश समय आलोचनाओं तथा उनके उत्तर में ही निकल जाता है ।

(४) **राजनीतिक दृष्टिकोण**—सभा में व्यय-विनियोग पर विचार करते समय सदस्यों का दृष्टिकोण राजनीतिक भावनाओं से भरा रहता है । प्रत्येक विरोधी सदस्य राजनीति की ओट में विभागों की आलोचना करता है जब कि वह वस्तु-स्थिति से परे रहता है ।

(५) **अनुदार दृष्टिकोण**—ब्रिटेन का दृष्टिकोण पूर्णतया अनुदार है । उसका उद्देश्य व्यय में कमी करना रहता है । अतः अनेक लोक-कल्याण व्यय की मदों में कटौती कर दी जाती है । यह दृष्टिकोण सर्वथा घातक है, क्योंकि आज की सरकार का दृष्टिकोण बहुत ही बदल चुका है, पूर्ण लोक-कल्याण ही सरकार का चरम लक्ष्य है । अतः राजकोष विभाग को अधिक उदार होना चाहिए ।

(६) **पूर्ण नियन्त्रण का अभाव**—ग्रेट ब्रिटेन में अनेक प्रशासनिक विभाग हैं । अतः उन विभिन्न विभागों का नियंत्रण केवल राजकोष विभाग ही करता है । इसलिए अर्थ-व्यवस्था का सम्यक नियोजन नहीं हो पाता है ।

उपर्युक्त विवरणों से ग्रेट ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था का पूर्ण परिज्ञान हो जाता है। उसके गुण-दोष का भी विवेचन हो जाता है। पार्लियामेण्ट ही वास्तव में अर्थ नीति का नियोजन तथा संचालन करती है। उसका यह संचालन संसद को शक्ति-सम्पन्न बना देता है।

अध्याय | ८

स्थायी कार्यपालिका या लोक सेवाएँ

प्रश्न—ब्रिटेन की स्थायी कार्यपालिका के संगठन पर प्रकाश डालिये।

परिचय

प्रत्येक लोकतांत्रिक व्यवस्था में शासन के दो पहलू होते हैं एक तो वह पहलू जिसके अन्तर्गत जनता द्वारा निर्वाचित के प्रतिनिधि आते हैं जो वास्तविक कार्यपालिका का निर्माण करते हैं, और दूसरे वे लोग जो लोक-सेवा नियमों के अनुसार प्रशासन में सहायता देने के लिए नियुक्त किए जाते हैं। प्रथम प्रकार के लोगों को शासन का व्यावसायिक अनुभव प्राप्त नहीं होता इसलिये उन्हें अविशेषज्ञ नौसिखिए (Amateurs) कहा जाता है, और दूसरे प्रकार के वे लोग जिन्हें प्रशासन का विशेष अनुभव प्राप्त होता है उन्हें विशेषज्ञ (Experts) की संज्ञा दी जाती है। इंगलैण्ड का संसदीय शासन भी इन्हीं दो प्रकार के वर्गों के लोगों द्वारा संचालित होता है।* प्रथम प्रकार के लोगों के सम्बन्ध में हम मंत्रिमण्डल के विवेचन के प्रसंग में विचार कर चुके हैं। दूसरे प्रकार के लोगों यथा सिविल सेवकों का स्थायी लोक सेवकों के विषय में यहाँ विचार करेंगे।

"Government in England is Govt. by amateurs. The subordinates are trained, the superiors are untrained we require some acquaintance with the technicalty of their work from the subordinate officials but none from the responsible chiefs.

—Sidney Low.

का अध्यक्ष मन्त्री होता है। कभी-कभी एक से अधिक विभाग भी मन्त्रियों को सौंप दिये जाते हैं। परन्तु कुछ विभाग ऐसे होते हैं जिनका संचालन समितियों द्वारा किया जाता है जैसे 'बोर्ड आफ ट्रेड'। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की समितियों का अध्यक्ष मन्त्रियों की तरह ही कार्य करता है। अतः विभागों के वाह्य संगठन में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। मन्त्रियों के कुछ सहायक भी नियुक्त किये जाते हैं। उनमें राजकीय मन्त्री तथा निजी संसदीय सचिव के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इसके उपरान्त स्थायी कर्मचारियों का नम्बर आता है। स्थायी कर्मचारी दो प्रकार के होते हैं—१. विभागीय स्थायी सचिव, २. निजी सचिव। इन दोनों सचिवों के सहयोग से प्रत्येक मन्त्री अपना कार्य सफलतापूर्वक करता है। स्थायी सचिव का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये वैतनिक कर्मचारी होते हैं। इन्हें संसद की सदस्यता नहीं उपलब्ध होती है। इनके पद भी स्थायी होते हैं। मन्त्रि-मण्डलीय सरकार के परिवर्तित होने से इनके पद पर कोई भी आघात नहीं होता है। इनका पद शासन-कुशलता एवं योग्यता के कारण होता है। किसी भी विभाग के स्थायी सचिव का पद रिक्त होने पर राजकोष विभाग के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के परामर्श से किसी वरिष्ठ योग्य व्यक्ति की नियुक्ति की जाती है। इसकी नियुक्ति पर मन्त्री की सहमति आवश्यक होती है परन्तु यह सहमति औपचारिक होती है। मन्त्री कभी-कभी इनका विरोध नहीं करता, और न स्वेच्छाचारिता का प्रदर्शन करता है।

निजी सचिव की नियुक्ति विभाग के अन्य योग्य कर्मचारियों में से की जाती है किन्तु निजी सचिव की नियुक्ति में विभाग के मन्त्री की सहमति आवश्यक होती है क्योंकि बहुधा वह अपनी मन-पसन्द का व्यक्ति चुना करता है। निजी सचिव मन्त्री के सभी कार्यक्रमों तथा आवश्यक पत्रों आदि को ठीक प्रकार से रखते हैं तथा मन्त्रियों से भेंट करने वाले व्यक्तियों के लिए समय का निश्चय करते हैं।

इसी क्रम से विभागों को भी अन्तर्विभागों में विभक्त कर दिया जाता है। उनके अलग अधिकारी होते हैं। प्रत्येक विभाग शाखा, उप-विभाग, अनुविभाग आदि में बाँट दिया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण शासनतन्त्र विभाजित कर दिया जाता है।

शासन-विभागों का संगठन

इंगलैण्ड के सभी शासन-विभागों का संगठन लगभग एक-सा ही है। वाह्य रूप से उनके संगठन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पाया जाता है। सभी विभागों

स्थायी कर्मचारी

ब्रिटेन में स्थायी कर्मचारी का इतिहास बड़ा ही रोचक है। कुछ समय पूर्व राज्य कर्मचारियों की नियुक्तियाँ सिफारिशों के आधार पर होती थीं। अतः यह परिपाटी बड़ी ही त्रुटिपूर्ण थी। इसी के परिणामस्वरूप अनेक अयोग्य तथा अकर्मण्य व्यक्ति भी उच्च प्रशासनाधिकारी बन जाते थे। इससे सारा शासनतन्त्र अव्यवस्थित एवं दोषपूर्ण हो जाता था। फलतः १८५५ ई० में सुधार करने का प्रयास किया गया। इसी वर्ष त्रिसदस्यीय सिविल सर्विस कमीशन की नियुक्ति की गई। इसने परीक्षात्मक योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की नियुक्ति आरम्भ की। इससे योग्य प्रतिभावान लोग उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होने लगे, बाद में परीक्षा प्रतियोगिता के रूप में बदल गई। १८७० ई० के अधिनियम ने इसको पूर्ण प्रतियोगात्मक बना दिया। अतः इसी समय से उच्च प्रशासकीय पदों पर प्रतिष्ठित होने के लिए सिविल परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक हुआ।

उपर्युक्त विधि से सभी राजकीय सेवायें परीक्षात्मक हो गईं। परन्तु कुछ नौकरियों को इनकी परिधि से बाहर ही रक्खा गया। सैनिक, औद्योगिक, शारीरिक श्रम एवं स्थानीय संस्थाओं की सेवाओं को इनसे अलग रक्खा गया। समय की गति के साथ ही ब्रिटेन में सिविल सर्विस कर्मचारियों की संख्या में तीव्रता से वृद्धि होती जा रही है। १८३२ ई० मे इन कर्मचारियों की संख्या २१,००० थी। परन्तु एक सदी के उपरान्त द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तक इनकी संख्या ७ लाख हो गई थी। इस वृद्धि का कारण नवीन विभागों की स्थापना एवं कार्यवृद्धि है। इस समय इनकी संख्या लगभग ८ लाख है।

कमीशन परिक्षाओं द्वारा योग्य व्यक्तियों का चुनाव करता है। परीक्षा के लिये आयु तथा योग्यता निर्धारित कर दी गई है। कोई भी ब्रिटिश नागरिक शिक्षा एवं आयु सम्बन्धी योग्ताओं की पूर्ति कर इस परीक्षा में बैठ सकता है। परीक्षा के कई विषय निर्धारित होते हैं। इतिहास, विधि, विज्ञान एवं साहित्य सम्बन्धी विविध विषयों में परीक्षा ली जाती है। इन परीक्षाओं का एकमात्र उद्देश्य सामान्य प्रतिभा एवं प्रशासनिक क्षमता का ज्ञान प्राप्त करना होता है। अमेरिका तथा फ्रान्स में इससे भिन्न परिपाटी है। वहाँ पर विशिष्ट विषयों की पृथक परीक्षा होती है। अनेक विभागों के कार्यानुकूल विषयों में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को ही रखने का प्रचलन है। परन्तु ब्रिटेन में तो केवल प्रतिभा का ही मूल्यांकन किया जाता है।

परीक्षा की दो विधियाँ—एक लिखित और दूसरी मौखिक। लिखित परीक्षा में तो किसी प्रकार छात्र पास हो ही जाते हैं। परन्तु मौखिक परीक्षा द्वारा उनका व्यक्तित्व, प्रत्युत्पन्नमति एवं व्यावहारिक कौशल जाँचा जाता है। परीक्षा के इन दोनों रूपों से सफल एवं प्रतिभावन व्यक्तियों को चुना जाना जाता है। कुछ स्थानों पर लिखित परीक्षा में सर्वोत्तम छात्र भी मौखिक परीक्षा में असफल सिद्ध होते हैं।

प्रशिक्षण—परीक्षा में सफल व्यक्तियों को प्रशिक्षित भी किया जाता है, क्योंकि पहले से ही प्रशासन कार्यों का ज्ञान किसी को नहीं होता है। राजकोष विभाग के अन्तर्गत एक केन्द्रीय शिक्षण विभाग भी है। यह विभाग कमीशन द्वारा प्रमाणित व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिये अन्यान्य विभागों को परामर्श देता है। इसके साथ ही एक शिक्षण संचालक भी है जो उच्च प्रशासक वर्ग को शिक्षित करता है। उच्च प्रशासकों के लिए तीन मास का पाठ्यक्रम बनाया गया है, जिसके आधार पर इनको शासन के सभी सामान्य सिद्धान्तों तथा कार्य-प्रणालियों से अवगत कराया जाता है। इस समय ब्रिटेन में परीक्षा की अपेक्षा प्रशिक्षण विधि पर अत्य-धिक जोर दिया जाता है। यही कारण है कि इसमें उत्तरोतर विकास हो रहा है तथा नवीन व्यवस्थाएँ भी चालू की जा रही हैं।

सामान्य अधिकारियों के लिये सम्बन्धित विभाग ही प्रशिक्षण का प्रबन्ध करता है। विभागीय प्रशिक्षण के लिये विभिन्न पद्धतियों का सहारा लिया जाता है। किन्हीं विभागों में प्रशिक्षण कक्षाएँ भी चालू की जाती हैं। कहीं पर पुराने कर्म-चारियों की देख-रेख में ही प्रशिक्षण पूरा होता है। कर्मचारियों का स्थानान्तरण एक शाखा से दूसरी शाखा को कर दिया जाता है अथवा एक विभाग से दूसरे विभाग में भेज दिया जाता है। इससे सभी कर्मचारी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

ब्रिटेन में सरकारी कर्मचारियों की पद में वृद्धि करने का भी विधान है। बहुधा विभागों में पद-वृधि में पक्षपात तथा अन्याय भी किया जाता है। अतः इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए दो साधनों का सहारा लिया गया है। प्रथम योग्यता एवं द्वितीय ज्येष्ठता के क्रम से पद-वृद्धि की जाती है। वैसे तो ज्येष्ठता के क्रम से अधिक-तर पद-वृद्धि होती रहती है। परन्तु अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों को भी पद-वृद्धि का अवसर दिया जाता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि उच्च प्रशास-कीय कर्मचारियों की पद-वृद्धि योग्यता पर ही आधारित रहती है। ब्रिटेन के प्रत्येक विभाग में इस आशय की एक पद-वृद्धि समिति नियुक्ति की जाती है। यह कर्मचारियों से प्रत्यक्ष भेंट करती है। उनके विगत कार्यों का अवलोकन तथा चारित्रिक सभ्यता

की परीक्षा करती है। इस प्रकार योग्यता तथा कार्य की परख करने के बाद यह समिति अपने विभागाध्यक्ष को उक्त विषय की पद-वृद्धि करने का परामर्श देती है। यदि भूल से किसी कर्मचारी के साथ पक्षपात या अन्याय होता है, तो वह अपील कर सकता है। इस प्रकार इङ्गलैण्ड के कर्मचारियों की पद-वृद्धि न्याय एवं औचित्य का विचार करके ही होती है।

अवकाश और अवकाश-वृत्ति—ग्रेट ब्रिटेन के कर्मचारियों का कार्य-काल तथा उनकी अधिकतम आयु निश्चित कर दी गयी है। निर्धारित आयु की समाप्ति पर या कार्य-काल की समाप्ति पर प्रत्येक कर्मचारी को राजकीय सेवाओं से अवकाश प्रदान किया जाता है तथा उनको आजीवन अवकाश-वृत्ति प्रदान की जाती है। ब्रिटेन में अवकाश ग्रहण की आयु ६० वर्ष है। यदि कर्मचारी चाहे तो इस अवस्था के पूर्ण होने पर अवकाश ग्रहण कर सकता है। परन्तु ६५ वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण करना अनिवार्य है। कर्मचारियों के कार्य-काल के $\frac{1}{80}$ भाग से वेतन को गुणित किया जाता है, जितना गुणनफल आता है उतनी ही पेन्शन प्रदान की जाती है। परन्तु अवकाश वृत्ति के लिये निम्न प्रतिबन्ध भी हैं :—

१—१० वर्ष से कम कार्य-काल की अवधि वाले कर्मचारी को पेन्शन नहीं दी जाती है।

२—केवल कुछ ही समय के लिए नियुक्त कर्मचारियों को पेन्शन नहीं मिलती है।

३—जो व्यक्ति बिना सिविल सर्विस कमीशन द्वारा प्रमाणित नियुक्त किये जाते हैं, उन्हें भी पेन्शन नहीं मिलती है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से सभी कर्मचारी सम्राट की इच्छा तक कार्य कर सकते हैं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से वे जीवन-पर्यन्त कार्य करते हैं। यदि किसी प्रकार का अभियोग उन पर लगाया जाता है, तो उसकी पूर्ण निष्पक्षता से जाँच होती है तथा कर्मचारी को सफाई देने का अवसर दिया जाता है। अभियोग सिद्ध होने के बाद भी वह एक बार अपील कर सकता है। इस प्रकार कर्मचारी नियमपूर्वक कार्य करते अपने पद पर बने रहते हैं।

ब्रिटिश लोक-सेवा की अनेक विशेषताएँ हैं। पद की सुरक्षा, आकर्षक वेतन, अवकाश-प्राप्त होने पर जीवन-निर्वाह का भोक्ता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

इसकी एक अन्य विशेषता ह्विटले कौंसिल्स (Whitley Councils) है। ह्विटले समितियों का जन्म १९१९ ई० में हुआ था। इन समितियों में लोक प्रशासन के व्यवस्थापकों और साधारण सदस्यों का प्रतिनिधित्व रहता है। लोक-सेवकों की

पदोन्नति, वेतन, अनुशासन इत्यादि से सम्बन्धित समस्याओं का इनके द्वारा समाधान किया जाता है ।

ब्रिटेन की राजकीय सेवा का वर्गीकरण—सेना इत्यादि की नौकरियों को छोड़कर शेष सभी नौकरियाँ सिविल सर्विस के अन्तर्गत आती हैं । इन नौकरियों में विभिन्न वर्ग हैं । अतः अध्ययन की सुविधा के लिए उनका निम्न रीति से वर्गीकरण किया जा सकता है ।

(१) **प्रशासक वर्ग**—ब्रिटेन का यह वर्ग सबसे अधिक सम्मानित, प्रतिष्ठित एवं उच्च पदाधिकारी होता है । शासन संचालन का वास्तविक सूत्र इन्हीं के हाथों में रहता है । इनमें विभागीय सचिव, स्थायी सचिव, सहायक सचिव एवं प्रधान आदि आते हैं । शासन की अनेक योजनाएँ, कार्यक्रम एवं विधि इसी वर्ग द्वारा निश्चित की जाती हैं । प्रो० लास्की ने इस श्रेणी को समस्त लोक सेवा का मस्तिष्क कहा है । उनकी कुशलता पर ही देश की उन्नति तथा अवनति निर्भर रहती है । कमीशन द्वारा इनकी परीक्षा होती है । इंगलैण्ड में प्रतिवर्ष ६० स्थान रिक्त होते हैं । अतः ४८ स्थानों के लिए प्रतियोगितात्मक परीक्षाएँ होती हैं किन्तु १२ स्थानों पर २८ वर्ष से कम आयु वाले निम्न अधिकारी आ जाते हैं । इन लोगों का वेतन केवल १००० पौण्ड से २००० पौण्ड तक होता है ।

(२) **प्रशासनिक वर्ग**—यह वर्ग प्रशासक वर्ग से निम्न कोटि का होता है । यह वर्ग भी प्रत्यक्ष प्रतियोगिता द्वारा चुन कर आता है । इनके अभ्यर्थियों की निम्नतम योग्यता उच्चतर माध्यमिक परीक्षा नियत की गई है । इनकी आयु भी १८-१९ वर्ष मानी गई है । कुछ लोग नीचे के वर्ग से भी आते हैं । इन कर्मचारियों का वेतन ५०० पौण्ड से १००० पौण्ड वार्षिक होता है । इस वर्ग का कार्य साधारणतया हिसाब-किताब रखना होता है ।

(३) **लिपिक वर्ग**—यह वर्ग संख्या में पर्याप्त होता है । इसकी निम्नतम शिक्षा माध्यमिक परीक्षा होती है । इस वर्ग का वेतन ६० पौण्ड से लेकर २५० पौण्ड वार्षिक होता है । ऊँचे वर्ग का वेत्तन ५००-पौण्ड तक पहुँचता है । यह वर्ग साधारण ड्राफ्ट बनाना, सारांश लिखना, आँकड़े तैयार करना आदि कार्य करता है ।

(४) **सहायक लिपिक वर्ग**—ग्रेट ब्रिटेन में इस वर्ग के अन्तर्गत अधिकतर लड़कियाँ कार्य करती हैं । प्रारम्भिक परीक्षा निम्नतम योग्यता मानी गई है । ये अधिकतर टाइप करने का कार्य करती हैं ।

इन कर्मचारियों की संख्या में द्वितीय महायुद्ध काल में बड़ी वृद्धि हो गई थी । १ अप्रैल १९६६ ई० को कर्मचारियों की संख्या इस प्रकार थी :—

	(हजार में)
प्रशासकीय गृह विभाग	२.५
प्रशासकीय वैदेशिक विभाग	१.१
कार्यकारिणी	८०.६
क्लर्क या लिपिक	
क्लर्क सहायक	२०५.६
टाइपिंग क्लर्क	२५.५
इन्सपेक्टर	२.८
सन्देशवाहक, कुली इत्यादि	२८.४
डाक-तार विभाग	१११.६
वैज्ञानिक व्यवसायिक विशेषज्ञ	७९.२
	८००.०

उपर्युक्त विवरण से ब्रिटेन के कर्मचारियों के वर्गीकरण पर प्रकाश पड़ जाता है।

इन विवरणों से ग्रेट ब्रिटेन के उच्च कर्मचारियों तथा तत्संबंधित विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जा चुका है। संक्षेप में ब्रिटेन के विभागों को भी जान लेना आवश्यक है। वर्तमान समय में ब्रिटेन में शताधिक विभाग कार्य कर रहे हैं। मंत्रिमण्डल देश की आवश्यकता के अनुसार नवीन विभागों की समाप्ति कर देता है। युद्ध-काल में अनेक विभाग खोले गये। परन्तु युद्ध के बाद उन्हें समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार समापन एवं स्थापन का चक्र चला करता है सामान्य रूप में ब्रिटेन के सभी विभागों को दो प्रमुख विभागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वे विभाग हैं जिनके द्वारा अर्थ-प्राप्ति का नियोजन किया जाता है अर्थात् राजस्व प्राप्त करने वाले विभागों को प्रथम कोटि में रक्खा जाता है। द्वितीय कोटि में वे विभाग आते हैं जिनके द्वारा लोक कल्याणार्थ सरकारी धनराशि व्यय की जाती है। अतः अध्ययन की सुविधा के लिये दोनों कोटि के विभागों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

(१) **अर्थ विभाग**—यह विभाग इंगलैण्ड के सभी विभागों से अधिक महत्वपूर्ण है। इस विभाग का अध्यक्ष चान्सलर ऑफ एक्सचेकर होता है। समस्त विभागों द्वारा उपलब्ध राजस्व इसी के नाम से अधिकोष (बैंक) में जमा किया जाता है। सभी [illegible]ार के विकास की योजनाओं का नियोजन व्यय की सीमा, मुद्रास्फीति, व्यय-विनियोग [illegible] वार्षिक आय-व्यय-पत्र को भी यही विभाग तैयार कराता है। ब्रिटेन के सभी के [illegible]

विभाग इसी के कुशल नेतृत्व में कार्य करते हैं। इस प्रकार यह राजकीय सेवाओं का संगठन एवं नियन्त्रण इसी के द्वारा किया जाता है। वस्तुतः मन्त्रिमण्डल के बाद इसी का प्रभुत्व सभी विभागों पर छाया रहता है।

(२) **कोष एवं लेखा-परीक्षण विभाग**—इस विभाग में देश के व्यय-विनियोग का सम्पूर्ण हिसाब-किताब रक्खा जाता है। इसके अध्यक्ष को प्रधान वित्त आदाता तथा लेखा परीक्षक कहा जाता है। संसद द्वारा व्यय-विनियोग के लिए धनराशि प्रदान करना इसी का कार्य है। राजकोष विभाग इसी की आज्ञा से धन प्रदान करता है। संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि के व्यय की पूर्ण परीक्षा इस विभाग द्वारा की जाती है। यदि कहीं पर गबन आदि मालूम होता है, तो यह तुरन्त ही पकड़ लेता है तथा सम्बन्धित अधिकारी से पूछताछ करता है। यही कारण है कि इसको संसद का सजग प्रहरी कहा जाता है।

(३) **डाक विभाग**—यह देश का सर्वाधिक उपयोगी एवं जनसेवी विभाग है। इससे साधारण जनता से लेकर उच्च अधिकारी तक को महत्वपूर्ण सुविधाएँ मिलती हैं। यद्यपि यह राजस्व उगाही का विभाग नहीं है परन्तु इसको राष्ट्र से पर्याप्त आय होती है। यही कारण है कि इसकी अर्थ विभाग में गणना की जा सकती है।

(४) **बोर्ड आफ कस्टम्स**—यह विभाग राजस्व उगाही का कार्य करता है। यह विभाग आयात-कर तथा उत्पादन-कर वसूल करता है।

(५) **बोर्ड आफ इनलैण्ड रेवेन्यू**—यह विभाग राजस्व उगाही का कार्य करता है। इसके द्वारा पाँच प्रकार के कर वसूल किये जाते हैं। ये कर निम्न-लिखित हैं—आय-कर, मृत्यु तथा उत्तराधिकार-कर, अतिरिक्त-कर, खान अधिकार तथा मुद्रा-कर।

(६) **वन तथा भूमि-विभाग**—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है ये विभाग जनसमृद्धि तथा कृषि द्वारा उत्पादित पदार्थों पर राजस्व प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त विभाग सरकार के कमाऊ विभाग हैं। निम्नलिखित विभाग व्यय विनियोग की धनराशि लोक कल्याणार्थ में लगाने वाले हैं :—

(१) **विदेश मन्त्रालय**—इस विभाग द्वारा परराष्ट्र सम्बन्ध को संचालित करने का उपक्रम किया जाता है। इस विभाग में कई विभाग मिले रहते हैं। वे निम्नलिखित हैं—परराष्ट्र विभाग, औपनिवेशिक विभाग, कामनवेल्थ विभाग।

(२) **स्वास्थ्य गृह, श्रम, नगर एवं राष्ट्र बीमा विभाग**—ऊपर के नामों से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह विभाग विभिन्न दिशाओं में ही कार्य करता है। बेकारी

की समाप्ति, स्वास्थ्य वृद्धि, गृह एवं नगर-निर्माण नियोजन तथा राष्ट्रीय बीमा आदि के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता बहुत है।

(३) **व्यापार, उद्योग तथा परिवहन**—इस विभाग में कई विभाग एक साथ जोड़ दिये गये हैं। व्यापार विभाग, कृषि विभाग, मत्स्य विभाग, ईंधन, शक्ति एवं परिवहन विभाग इसी के अन्तर्गत सम्मिलित रहते हैं।

(४) **शिक्षा तथा प्रसार**—यह शिक्षण तथा प्रसार कार्यों का सम्पादन करता है। प्रसार कार्यों में नीति सम्बन्धी बातों का अधिक समावेश रहता है।

(५) **गृह एवं विधि**—इस विभाग के अन्तर्गत न्याय सम्बन्धी कार्य आते हैं। न्याय के कार्यों का न्यायपालिका वाले अध्याय में वर्णन किया जा चुका है।

(६) **सामान्य प्रबन्ध**—इसके अन्तर्गत कई विभागों को रक्खा जा सकता है। यथा केन्द्रीय सूचना विभाग, लेखन सामग्री विभाग एवं सार्वजनिक विभाग।

(७) **रक्षा-विभाग**—इस विभाग में जल, स्थल तथा वायु सेना आती है। इन सेनाओं की नीतियों का नियोजन रक्षा विभाग द्वारा किया जाता है।

(८) **खाद्य विभाग**—इस विभाग के अन्तर्गत अनेक वस्तुओं को उपयुक्त स्थलों पर भेजने का कार्य किया जाता है। शोध कार्य, वायुयान निर्माण, अणुशक्ति, अन्न आदि का प्रबन्ध इसी विभाग द्वारा किया जाता है।

सारांश

१—संसद पद्धति की शासन-व्यवस्था में स्थायी कार्यपालिका या लोक-सेवाओं (पब्लिक सर्विसेज) का विशेष महत्व होता है। ग्रेट ब्रिटेन की संसद व्यवस्था में भी लोक-सेवाओं का विशिष्ट महत्व है। यह संसार की अत्यन्त सफल लोक-सेवाओं में गिनी जाती है।

२—ग्रेट ब्रिटेन की लोक-सेवाओं का सदस्य, क्राउन का सेवक माना जाता है। १९५५ ई० में ब्रिटेन में लगभग ६,३६,०९८ सिविल सेवक थे जिनमें से एक-तिहाई संख्या महिलाओं की थी। ये सिविल सेवक क्राउन के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। उनका किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं होता।

३—पहले ब्रिटेन की सिविल सेवाएँ अव्यवस्थित थीं। नियुक्ति में सिफारिश एवं पक्षपात की प्रधानता थी, योग्यता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। कालान्तर में इस दिशा में सुधार हुआ। १८५५ ई० में सिविल सर्विस सेवा-आयोग की स्थापना हुई और १८७० ई० में सभी सेवाओं में प्रतियोगिता परीक्षाओं का चलन हुआ।

४—ब्रिटेन में प्रधानतया सिविल सेवकों के चार वर्ग—१—एडमिनिस्ट्रेटिव क्लास, २—एक्जीक्यूटिव क्लास, ३—क्लरिकल क्लास, ४—टाइपिंग क्लास होते हैं। इन प्रधान वर्गों के अन्तर्गत भी कई प्रकार के अधिकारी होते हैं।

५—सिविल सेवक सर्विस कमीशन द्वारा चुने जाते हैं। इसके उपरान्त उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है। सिविल सेवकों की पदोन्नति उनके विभागीय अध्यक्षों द्वारा उनकी सेवाओं के प्रतिमान एवं ज्येष्ठता के आधार पर की जाती है। वे ६० वर्ष की अवस्था में अवकाश प्राप्त करते हैं।

६—प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से शासन प्रबन्ध कई विभागों में विभक्त है—दि ट्रेजरी, दि एडमिरेल्टी, खाद्य, मृत्यु एवं कृषि विभाग शिक्षा-विभाग, लार्ड चांसलर, बोर्ड आफ ट्रेड, युद्ध विभाग इत्यादि।

आवृत्ति के लिए अन्य प्रश्न

प्रश्न १—"ब्रिटिश संसद् मन्त्रि-मण्डल के हाथ में है और मन्त्रि-मण्डल स्थायी पदाधिकारियों के हाथ में है।" व्याख्या कीजिये।

अथवा

प्रश्न २—"ब्रिटिश शासन 'विशेषज्ञों' और 'अविशेषज्ञों' का समन्वित रूप है।" इस कथन से आपका क्या अभिप्राय है?

[इस प्रश्न के उत्तर में विशेषकर निम्नांकित तथ्यों का उल्लेख कीजिये।]

ग्रेट ब्रिटेन में प्रधान कार्यपालिका शक्ति मन्त्रि-मण्डल के हाथों में है। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग का मुखिया होता है। अपने विभाग के कार्य के लिए वह उत्तरदायी होता है परन्तु मन्त्री का पद स्थायी होता है और जिन विभागों के शासन का दायित्व उसके ऊपर रहता है उसके विषय में उसे विशेष ज्ञान नहीं होता। उदाहरण के लिए युद्ध-विभाग का संचालन कोई व्यवसायी कर सकता है, ट्रेजरी किसी पत्रकार द्वारा संचालित हो सकता है, चांसलर आफ एक्सचेकर गणित का क ख ग भी न जानता हो।[1] इसका एक प्रधान कारण यह है कि मन्त्रियों की पदावधि संक्षिप्त होती है, उसे

१. मन्त्रियों की अनभिज्ञता से सम्बन्धित कई रोचक दृष्टान्त हैं। उपनिवेश विभाग के मन्त्री लार्ड पामरस्टन को अपने सहायक लोक सेवक से यह कहना पड़ा कि वह आकर उसे बिखरे उपनिवेशों की जानकारी दे—"Just come upstairs for half an hour and tell me where there confounded colonies are on the map."

—**Lord Palmerston**

इतना अवकाश नहीं मिल पाता कि वह अपने विभाग के विषय में विशेष ज्ञान अर्जित कर सके। इसलिए वह अपने विभाग की सामान्य नीति तो निर्धारित कर देता है परन्तु उसकी क्रियान्विति के लिए अपने अधीनस्थ स्थायी पदाधिकारियों पर निर्भर रहता है। लेविस के शब्दों में मन्त्री का काम यह नहीं है कि वह विभाग को चलाये। उसका काम तो यह देखना है कि वह ठीक से चल रहा है या नहीं। इसके विपरीत स्थायी पदाधिकारी अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं। अपने कार्य के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित होते हैं। स्थायी पदाधिकारी होने के नाते उन्हें अपने कार्य का दीर्घ अनुभव भी प्राप्त होता है। मुनरो के शब्दों में "मन्त्रि-मण्डल और संसद आते हैं और चले जाते हैं लेकिन टेनिसन की सरिता की भाँति स्थायी सिविल सेवक अपने पथ पर चलते जाते हैं। दोनों पक्षों का अपना महत्व है। उनमें से एक सरकार को लोकप्रिय बनाता है, दूसरा उसे दक्ष बनाता है। अच्छी सरकार की कसौटी जनतंत्र तथा दक्षता का सफलतापूर्वक संयोग है।

प्रश्न ३—क्या आप रैम्जे म्योर के इस कथन से सहमत हैं कि ब्रिटिश नौकरशाही से ब्रिटेन-वासियों की स्वतन्त्रता को शंका है ?

गत दशकों में ब्रिटेन की लोक सेवाओं या स्थायी कार्यपालिका की तीव्र भर्त्सना की गई है। विख्यात राजविज्ञ रैम्जे म्योर ने एक स्थल पर कहा था कि ब्रिटेन की नौकरशाही मन्त्रि-मण्डलीय उत्तरदायित्व की ओट में उत्तरोत्तर सशक्त होती चली आ रही है।

"Bureaucracy in England thrives under the cloak of Ministerial responsibliity.'

सन् १९२९ ई० में लार्ड हेवर्ट (Lord Hewart) ने अपनी पुस्तक 'New Despotism' (न्यू डेस्पाटिस्म) में इस बात पर गंभीरता से विचार किया था और कहा था कि स्थायी कार्यपालिका की बढ़ती हुई निरंकुशता पर अंकुश की आवश्यकता है। प्रो० सी० के० एलेन (C. K. Allen) ने अपनी पुस्तक Bureaucracy Triumphant में इस प्रकार मन्तव्य व्यक्त करते हुए कहा कि इङ्गलैण्ड की नौकरशाही संसदीय लोकतंत्र के लिए खतरा है। इन विद्वानों ने अपने पक्ष के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए हैं :

(१) सिविल सेवक शासन के प्रत्येक पक्ष पर छाए हैं। वे ही प्रशासन का विशेष अनुभव रखते हैं, फलतः मंत्रिगण उनके परामर्श पर कार्य करते हैं। जैसा कि सी० डी० बर्नस ने कहा है "Only an expert can fit the new policy into the old administration, and the Permanent offIcial may

often have to suggest to the political minister what can and what can not be done, as well as how to do what can be done. Thus new policy is very often the actual product and still often result of corrections and suggestions of the permanent civil servants."*

(२) वर्त्तमान युग में पूँजीवाद के विकास के साथ ही साथ राज्यों के कार्यों में वृद्धि हुई है। इस वृद्धि ने नौकरशाही की शक्ति में भी वृद्धि की है।

(३) लोकसेवकों की भर्ती के लिए लोक सेवा आयोगों की स्थापना हुई, फलतः विश्वविद्यालयों से निकली हुई नई प्रतिभाओं का प्रवेश हुआ। इस प्रकार लोक सेवाओं में योग्यता के सिद्धान्त के प्रवेश के कारण शक्ति का सन्तुलन लोकसेवकों के पक्ष में रही।

(४) विधि-निर्माण का कार्य इतना अधिक और इतना जटिल हो गया है कि प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। इस वृद्धि ने नौकरशाही की शक्तियों में भी वृद्धि की है।

(५) मंत्रीगण शासन का विशेष अनुभव नहीं रखते। वे लोग राजनीतिज्ञ होते हैं। विभागीय जटिलताओं तथा समस्याओं का उन्हें ज्ञान नहीं होता। जैसा कि सर सिडनी लो ने लिखा है कि "किसी भी युवक को वित्त मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी का क्लर्क बनने के लिए गणित की परीक्षा अनिवार्यतः पास करनी पड़ती है; परन्तु वित्त मंत्री कोई ऐसा प्रौढ़ व्यक्ति हो सकता है जो ईटन तथा आक्सफोर्ड की शिक्षा भूल चुका हो और जब दशमलवों में कोष का लेखा उसके सामने पहली बार रखा जाता हो तब वह उन छोटे-छोटे विन्दुओं का अर्थ जानना चाहता हो।" इसका परिणाम यह होता है कि मंत्रीगण प्रधानतया अपने विभाग विषयक जानकारी इत्यादि के लिए पूर्णतया अपने अधीनस्थ अधिकारियों पर निर्भर रहते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि संसद मंत्रिमण्डल के आधीन है और मंत्रिमण्डल नौकरशाही के अधीन है।

(६) मंत्री लोग राजनीति में डूबे व्यक्ति होते हैं। उन्हें अपने निर्वाचन क्षेत्र, संसदीय उत्तरदायित्व, दलीय राजनीति से अवकाश नहीं मिल पाता जब कि लोक-सेवकों के साथ यह बात नहीं होती। यह स्थिति भी नौकरशाही की शक्तियों में वृद्धि कर देती है।

(७) लोकसेवकों को प्रशासकीय न्याय (Administrative Justice) के अन्तर्गत न्याय के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण शक्तियाँ मिल गई हैं।

---

*C. D. Burns' : White Hall.

इस प्रकार उपर्युक्त आधारों पर वर्त्तमान समय में इंगलैण्ड की नौकरशाही अत्यधिक शक्ति-सम्पन्न हो गई जिसकी शक्ति-सम्पन्नता को नव-निरंकुशवाद की संज्ञा दी गई है। किन्तु प्रो० लास्की और लावेल जैसे विद्वान् इन आधारों में विश्वास नहीं करते। अन्त में हम न्यूमैन महोदय के शब्दों में कह सकते हैं कि "अधिनायक-वाद या तानाशाही कहे जाने का कोई तथ्ययुक्त कारण नहीं है। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश सिविल सर्विस राज्य के अन्तर्गत राज्य नहीं है।......लोकसेवक के सिर पर उत्तरदायी मंत्री है जिसका काम सिविल सर्विस को यह बतलाना है कि जनता क्या नहीं चाहती ?"

अध्याय | ९

न्यायपालिका

प्रश्न—ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

परिचय—प्रत्येक देश में न्यायपालिका का संगठन किया जाता है क्योंकि संसद के अधिनियम स्वतः क्रियाशील नहीं होते हैं, उनका मनुष्यों द्वारा नियोजन होना चाहिए।

वस्तुतः न्याय-कार्यों का नियोजन देश के सर्वतोमुखी कल्याण के लिए किया जाता है। ब्रिटिश संविधान भी इसका अपवाद नहीं है। इस संविधान में न्यायपालिका की व्यवस्था है। नागरिक अधिकारों का विधिवत् संरक्षण है तथा स्वातन्त्र-भावना की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश न्यायपालिका सदियों के विकास का परिणाम है। अतः न्यायालय ही देश के सुव्यवस्थित रीति से विधि-पूर्वक नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण देश का नियोजन विभिन्न विधियों के अन्तर्गत किया जाता है। विधियों के जो विभिन्न भेद इंग्लैण्ड में विकसित हुए हैं उनका प्राथमिक उल्लेख निम्न रीति से किया जा सकता है :—

ब्रिटिश विधियों के विभिन्न भेद

(१) **कामन लॉ**—अँग्रेज जाति का वैधानिक इतिहास बहुत पुराना है। अतः संविधान की भाँति विधि का विकास लोक-परम्पराओं के माध्यम से सम्भव हो सका है। सम्पूर्ण लोक-प्रथाएँ तथा उन पर आधारित निर्णयात्मक सिद्धान्तों का सृजन 'कामन लॉ' की कोटि में किया गया है। पहले देश अनेक विभागों में विभक्त था, विविध लोक-परम्पराएँ थीं। अनेक मान्यताओं की प्रतिष्ठा थी। परन्तु नार्मन विजय से देश एकसूत्रता में बँध गया। फलतः स्थानीय न्यायलयों का संयोजन किया गया। इन्हीं के साथ भ्रमणशील न्यायालयों की भी व्यवस्था की गई। इसी के परिणाम-स्वरूप विभिन्न स्थानों की लोक-विधि का संगठन, संव्यूहन-पूनियोजन किया गया। अनेक विधियाँ अपनी उपयोगिता एवं उत्तमता के कारण सर्वदेशिक एवं सार्वमान्य हो गई। इसके अतिरिक्त हेनरी द्वितीय के शासनकाल में इन लोक-विधियों को और अधिक सम्बल मिला। अनेक विद्वान न्यायाधीशों ने लोक-विधियों की मीमांसा की, उनके उपादेय तथ्यों को खोज निकाला। परिणामतः लोक-विधि का स्वरूप उभर आया। इसी समय से इनको सार्वदेशिक रूप में विधि मान लिया गया। इसके साथ ही विभिन्न न्यायाधीशों के निर्णय भी इसमें मिल गये। भूत का निर्णय वर्तमान तथा भविष्य अधिकांशतः यह भाग अलिखित ही है।

समय-समय पर विद्वानों ने लोक विधियों की मीमांसा की है। उनको एकत्र किया गया तथा उन पर टीका-टिप्पणी की गई। इस प्रकार अलिखित होने पर भी अनेक विधियाँ एकत्रित मिल जाती हैं। सरकार द्वारा अधिकृत रूप से प्रकाशित कराने का कभी भी प्रयास नहीं किया गया है। अब लोक-विधियों का विकास रुद्ध हो गया है क्योंकि संसद ही कानूनों का निर्माण करने लगी है। परन्तु लोक-विधि अब भी मूलाधार है। इस विधि बिना संसदीय विधियाँ प्रभावहीन हो जावेंगी। अतः लोक-विधि को किसी भी प्रकार से हीन नहीं समझा जा सकता है। लोक-विधि का विकास एवं प्रसार केवल ग्रेट ब्रिटेन में ही नहीं अपितु ब्रिटिश उपनिवेशों में भी इसका विस्तार हुआ है। अमेरिका इस विषय का सबसे अच्छा उदाहरण है। परन्तु यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि संसदीय विधियाँ सर्वोपरि समझी जाती हैं। लोक-विधियों का स्तर सबसे निम्न है। संसद की विधियाँ किसी भी लोक-विधि का अतिक्रमण कर सकती हैं। इस प्रकार लोक-विधियों की मान्यता स्पष्ट हो जाती है। लोक-विधि के दोषों को दूर करने के लिए भी विधि का विकास किया गया है।

(२) **इक्विटी**—लोक-विधि में भी अनेक दोष थे। बहुधा जनता को लोक-विधियों से संतोषजनक निर्णय नहीं मिल पाता था। अतः इसका समाधान करने के लिए जनता ने सम्राट का आश्रय लिया। उसको समस्त विधियों से सर्वोच्च माना।

सम्राट का निर्णय लोक-विधि का अतिक्रमण कर सकता है, ऐसी मान्यता प्रबल हो गई । अतः असन्तुष्ट जन-समुदाय ने सम्राट के पास न्यायाधिकरण के लिए प्रार्थना की । सम्राट ने भी अपने विवेक से निर्णय करना प्रारम्भ कर दिया । फलतः सम्राट के पास इतने अधिक अभ्यर्थियों के आवेदन-पत्र पहुँचने लगे कि निर्णय करना दुष्कर हो गया, अतः सम्राट ने यह कार्य चांसलर को सौंप दिया । उन दिनों चांसलर प्रधान पादरी होता था । वह धर्म, न्याय तथा नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता था । चांसलर ने सम्राट के नाम पर निर्णय प्रारम्भ किया । इसे सम्राट के विवेक करना रक्षक के नाम से सम्बोधित किया गया । समय की गति के साथ इसके पास कार्य की अधिकता एवं न्यायिक जटिलता बढ़ी, इसलिए सहायक नियुक्त किये गये । इन सहायकों को 'मास्टर्स इन चान्सरी' कहा गया है। कालान्तर में इस कार्य के लिए एक पृथक् न्यायालय स्थापित किया गया । वह इक्विटी न्यायालय के नाम से प्रसिद्ध हो गया । इस प्रकार इक्विटी विधियाँ लोक-विधियों का संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप हैं । परन्तु इनको पृथक् विधि की मान्यता प्राप्त है ।

व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से यह विधि पुराने 'रोमन ला' (Roman Law) से अत्यधिक प्रभावित हुई है । परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि लोक-विधि की अपेक्षा इक्विटी की सीमा संकुचित है । इसके अन्तर्गत दीवानी के मामले ही आ सकते हैं परन्तु सभी प्रकार के दीवानी के मामलों पर भी विचार नहीं किया जा सकता है । विशेषकर ट्रस्टी संबंधी मामलों पर विचार किया जाता है । जैसा कि कहा जा चुका है लोक-विधि की अपेक्षा इक्विटी की प्रभाव-परिधि अधिक है । यह लोक-विधि का अतिक्रमण कर सकती है किन्तु लोक-विधि इसका नहीं ।

(३) **संसदीय विधियाँ**—ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट पूर्ण संप्रभु है । वह प्रति वर्ष लगभग शताधिक विधियों का पारण करती है । पार्लियामेण्ट द्वारा पारित विधियाँ देश में सर्वोपरि हैं । कोई उन्हें अवैध नहीं कह सकता है । जैसा कि भारत तथा अमेरिका में होता है । भारत एवं अमेरिका के संविधान लिखित हैं अतः वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय किसी भी अवैधानिक विधि को मानने से इंकार कर सकते हैं । परन्तु इंग्लैण्ड में कोई न्यायालय ऐसा नहीं कर सकता । वहाँ पर संसदीय विधि ही सर्वोच्च है । ब्रिटेन में अवैधानिक का तात्पर्य परम्परा-विरुद्ध होता है । इस प्रकार संसद को प्रभुता प्राप्त है । इसका 'स्टेट्यूट' ही सर्वोपरि विधि है । इसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है । शेष दोनों विधियों का उल्लंघन संसदीय विधियाँ कर सकती हैं ।

ब्रिटिश न्यायालय—कुछ समय पूर्व ब्रिटिश न्यायालयों का संगठन सुव्यवस्थित नहीं था, न्यायालयों की विविध कोटियाँ थीं, उसके अधिकार-क्षेत्र अनिर्णीत थे, सम्पूर्ण देश में न्यायालयों का जाल बिछा था किन्तु एकसूत्रता का अभाव था । दीवानी,

फौजदारी, 'इक्विटी', उत्तराधिकार एवं तलाक सम्बन्धी विविध न्यायालय थे। इन न्यायालयों के विषय में कभी-कभी विधि-विशेषज्ञ भी भ्रमित हो जाते थे। न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र का स्पष्ट निर्णय नहीं हो पाता था। अतः ऐसी अवस्था को समाप्त करने के लिए १८७२-७६ में सुधार अधिनियम पारित किये गये। इन विभिन्न सुधारों के परिणाम-स्वरूप सभी न्यायालयों को एकसूत्र में पिरो दिया गया। प्रत्येक न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र निश्चित कर दिया गया। इसके साथ ही पारस्परिक सम्बन्ध भी सुव्यवस्थित कर दिये गये। सभी छोटे-छोटे न्यायालयों को सर्वोच्च न्याया-लयों की शाखाओं के रूप में मान्यता प्रदान की गई। इसी समय से 'हाउस आफ लार्डस' को सर्वोच्च न्यायालय का रूप प्रदान किया गया तथा उसमें विधि-विशेषज्ञ ला-लार्डों की नियुक्ति प्रारम्भ हो गई।

'हौउस आफ लार्ड्स' को न्यायाधिकरण-तंत्र के सर्वोच्च शिखर पर आसीन किया गया। लार्ड चांसलर की प्रतिष्ठा भी इसी के समकक्ष बनी रही। इसके नीचे उच्चतम न्यायालय की प्रतिष्ठा की गई। इस उच्चतम न्यायालय को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) **कोर्ट आफ अपील**—इसके अन्तर्गत सभी प्रकार की अपीलें नीचे के उच्च न्यायालय के विरुद्ध सुनी जाती हैं।

(२) **कोर्ट आफ जस्टिस**—इस उच्च न्यायालय को तीन शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है—

(क) **किंग्स बेंच**—इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के दीवानी तथा फौजदारी मामलों पर विचार किया जाता है।

(ख) **चान्सरी**—इक्विटी संबंधी समस्त मामलों की सुनवाई इस शाखा के अन्तर्गत होती है।

(ग) **प्राइवेट डाइवोर्स एण्ड ऐडमिरेल्टी**—इसके अन्तर्गत उत्तराधिकार, तलाक एवं जहाज पर घटित होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित अपराधों पर विचार किया जाता है।

उपर्युक्त प्रकार सर्वोच्च न्यायालय का संगठन बताया गया है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हाउस आफ लार्ड्स इन सब के अन्त में आता है। 'हाउस आफ लार्डस' द्वारा कृत निर्णयों को कोई भी अमान्य घोषित नहीं कर सकता है। केवल संसद ही नया कानून बनाकर इसका अतिक्रमण कर सकती है। बिना संविधान बदले कोई भी निर्णय नहीं बदल सकता है।

निम्न श्रेणी के न्यायालय—हाईकोर्ट से नीचे दीवानी न्यायालयों का संगठन है। ब्रिटेन में इनको काउण्टी कोर्ट कहते हैं। जिस प्रकार भारत में जिले हैं, ठीक

उसी प्रकार इंगलैण्ड में काउण्टियों का नियोजन किया गया है। इनकी संख्या ६२ है किन्तु न्याय-व्यवस्था के लिए इनका विभाजन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है। लगभग ५०० भागों को ६० सूत्रों में संयुक्त कर दिया गया है। प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार न्यायधीश अपने क्षेत्रों का दौरा किया करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में ये कम से कम एक बार अवश्य ही दौरा किया करते हैं। अधिकार की दृष्टि से इन न्यायालयों का अधिकार-क्षेत्र सीमित होता है। लगभग २०० पौण्ड तक के मुकदमों पर इन न्यायालयों में विचार किया जा सकता है। इससे अधिक मूल्य के मुकदमे हाईकोर्ट में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। दीवानी सम्बन्धी मुकदमों को किंग्स बेंच डिवीजन में दायर किया जाता है। इसके बाद की अपील के लिए 'कोर्ट आफ अपील' में मुकदमा ले जाया जा सकता है। कोर्ट आफ अपील की अनुमति के बिना हाउस आफ लार्ड्स में अपील नहीं की जा सकती।

दण्ड-विधि न्यायालय—फौजदारी सम्बन्धी न्यायालय का भी संगठन किया गया है। फौजदारी के मामले जस्टिस आफ पीस के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं। ये जस्टिस अवैतनिक होते हैं। सम्पूर्ण देश में इनकी संख्या २०,००० के लगभग है। प्रत्येक काउण्टी में इनकी संख्या ३०० तक होती है। इनकी नियुक्ति लार्ड चान्सलर करता है। परन्तु वह स्थानीय समितियों से इस विषय में परामर्श प्राप्त कर लेता है। इन न्यायाधीशों का अधिकार-क्षेत्र सीमित होता है। २० शिलिंग से अधिक दण्ड तथा दो सप्ताह से अधिक कैद की सजा देने का अधिकार इनको नहीं है। अपने अधिकार से बाहर का मुकदमा ट्रायल के लिए सौंप दिया जाता है। ट्रायल वाले अभियुक्तों का मुकदमा पेटी सेशन्स अथवा क्वार्टर सेशन्स में प्रेषित किया जाता है। ये दोनों न्यायालय अनेक प्रवेशी न्यायाधीशों के सहयोग से बनते हैं। क्वार्टर न्यायालय में सम्पूर्ण काउण्टी के 'जस्टिसेज आफ पीस' सम्मिलित हो सकते हैं। परन्तु कभी भी न्यायाधीश नहीं आते हैं। सम्मिलित होने वालों की संख्या दस या बारह से अधिक नहीं होती है। पेटीशन्स ५० पौण्ड तक अर्थ-दण्ड तथा ६ मास तक की सजा देने के लिए अधिकृत हैं। इस न्यायालय के विरुद्ध क्वार्टरसेशन्स अपील सुनता हैं। अधिक गम्भीर मुकदमे या तो क्वार्टर सेशन्स में सुने जाते हैं अथवा असाइजेज न्यायालय में भेजे जाते हैं। इस न्यायालय में किंग्स बेंच के दो न्यायाधीश भी सम्मिलित रहते हैं। ये मुख्य न्यायाधीश दौरा भी करते हैं और नगरों तथा काउण्टियों के मुकदमों का निर्णय किया करते हैं। इसी न्यायालय में जूरी द्वारा मुकदमे में विचार कराने की माँग अभियुक्त कर सकता है।

ब्रिटेन की जूरी पद्धति—ब्रिटेन के न्यायालयों में जूरी द्वारा विचार करने की परिपाटी का विशिष्ट स्थान है। दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों में इनका प्रयोग किया जाता है। जूरी नागरिकों में से ही चुने जाते हैं। अभियुक्त चुने गये जूरियों के किसी नाम पर आपत्ति भी कर सकता है। ये लोग वास्तविक तथ्य का विवेचन न्यायाधीशों के सामने करते हैं। न्यायाधीश वैधानिक दृष्टिकोण से उपलब्ध तथ्यों पर विचार करता है। जूरियों के तथ्य अभियुक्त को दोषी या निर्दोष सिद्ध करने तक ही सीमित रहते हैं। इसके आगे न्यायाधीश का अधिकार-क्षेत्र आ जाता है। यदि जूरी किसी व्यक्ति को निर्दोष प्रमाणित कर देते हैं, तो न्याया-लय उसको छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

उपर्युक्त प्रकार से ब्रिटेन के न्यायालयों का संक्षिप्त वर्णन हो जाता है। वस्तुतः ब्रिटेन में न्यायालय-व्यवस्था संघठित की गई है। ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था अनेक प्रकार से लोक-प्रसिद्ध है। न्यायालय में निर्णयों के अतिरिक्त भी न्यायाधीशों की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर न्याय तथा विधि-निर्माण को प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

न्यायाधीशों द्वारा विधि-व्यवस्था—यह सुविदित ही है कि संसद विधियों का निर्माण करती है। विधि-निर्माण करते समय उसमें प्रत्येक परिस्थिति तथा सम्भावित उलझनों के निराकरण का निर्देश नहीं होता है। इसलिए संसद द्वारा पारित विधियों की समुचित व्यवस्था ये न्यायालय ही किया करते हैं। कानून के अन्तर्गत विविध उत्पादनों तथा उनसे सम्बन्धित भ्रान्तियों का निर्णय न्यायाधीशों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार परोक्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि न्यायधीशों को विधि-निर्माण के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान रहता है। कामन ला तथा इक्विटी नामक कानून न्याक्राधीशों के मस्तिष्क की ही उपज हैं। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि ये लोग विधि के अस्थि-पंजर को मांसल परिधान पहनाया करते हैं। कतिपय देशों में सर्वोच्च न्यायालय को संसद द्वारा पारित विधियों का सर्वेक्षण करने का अधिकार प्राप्त है। यदि कोई विधि देश के संविधान का अतिक्रमण करती है तो सर्वोच्च न्यायालय उस विधि को अवैध घोषित कर सकता है। किन्तु ब्रिटेन इस तथ्य का पूर्ण अपवाद है। वहाँ संसद द्वारा पारित विधि को कोई भी न्यायालय अवैधानिक नहीं कह सकता और न उस विधि का पालन करने से इन्कार ही कर सकता है। ब्रिटेन में अवैधानिक का अर्थ परम्परा से विरुद्ध के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय पर संसद का एकमात्र प्रभुत्व है। ब्रिटेन के न्यायालय किसी भी विधि की आलोचना तो कर सकते हैं। परन्तु उसको लागू करने से रोक नहीं सकते हैं जब कि भारत तथा अमेरिका आदि देशों के सर्वोच्च न्यायालय असं-वैधानिक विधि को मानने से स्पष्ट इन्कार कर सकते हैं।

ग्रेट ब्रिटेन की न्याय-व्यवस्था-एक आदर्श—ग्रेट ब्रिटेन के न्यायालय दूसरों के लिए अनुकरणीय एवं आदर्श हैं। यहाँ की न्याय-व्यवस्था उत्कृष्ट है। इनमें निष्पक्षता का समावेश है, शीघ्रगामी निर्णय की प्रतीक्षा है। यही कारण है कि विश्व के अनेक देशों में इस व्यवस्था का अनुकरण किया गया है। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रसार के साथ ही उसकी न्याय-व्यवस्था सारे विश्व में फैली तथा अपनाई गई है। यद्यपि यह सर्वथा त्रुटिहीन नहीं है किन्तु इसकी आदर्श व्यवस्था दूसरों के लिए अनुकरणीय अवश्य है। एडवर्ड जेम्स ने अपनी पुस्तक में इस व्यवस्था के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

(१) **न्याय-व्यवस्था के मूल सिद्धान्त**—न्याय-व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों का वर्णन निम्न रीति से किया जा सकता है :—

(क) **प्रत्यक्ष निर्णय**—सभी न्यायालयों में मुकदमों का निर्णय प्रत्यक्ष रीति से किया जाता है। गुप्त न्याय करने की प्रणाली का प्रचलन नहीं है। सभी व्यक्ति न्यायालयों में जाकर न्याय सम्बन्धी कार्यवाही का अवलोकन कर सकते हैं। इसमें किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं है।

(ख) **वकीलों का सहयोग**—प्रत्येक व्यक्ति वकीलों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। चाहे वादी हो अथवा प्रतिवादी दोनों ही अपने विचार, प्रमाण तथा तर्क न्यायाधीशों के सामने रख सकते हैं। दोनों पक्षों को अपने मत को स्पष्ट करने के लिए अवसर प्रदान किया जाता है।

(ग) **जूरी द्वारा विचार**—फौजदारी या दीवानी के गभीर मुकदमों में अभियुक्त जूरियों द्वारा विचार करा सकता है। जूरी निष्पक्ष होकर मुकदमों के तथ्यों का स्पष्टीकरण करते हैं। यह व्यवस्था न्याय के क्षेत्र में अद्वितीय है। इससे तथ्य पर पर्दा नहीं डाला जा सकता है, फलतः न्याय निष्पक्ष होता है।

(घ) **कारणों का स्पष्टीकरण**—प्रत्येक न्यायाधीश अपना निर्णय खुले न्यायालय में सुनाता है। इसके साथ ही वह कारणों पर भी प्रकाश डालता है। इस प्रकार प्रत्येक निर्णय पर कारणों का सटीक उल्लेख किया जाता है।

(ङ) **प्रमाणों का निश्चय**—ब्रिटेन में प्रमाणों की उपस्थिति के लिए भी विधियाँ बनाई गई हैं। उन्हीं के अनुसार वादी प्रतिवादी अपने प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं। सभी प्रमाण आवश्यक एवं अनिवार्य नहीं समझे जाते हैं।

(च) **पुनर्विचार**—लगभग सभी प्रकार के मुकदमों पर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। अन्तिम अपील हाउस आफ लार्डस में की जाती है। हाउस आफ लार्डस के निर्णय को अमान्य करने के लिए संसद को नया कानून बनाना पड़ेगा।

न्याय-व्यवस्था के उपर्युक्त मूलभूत तथ्यों से ब्रिटेन की सुदृढ़ न्याय-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ जाता है।

(२) न्याय-कार्य में शीघ्रता—ब्रिटिश न्याय-प्रणाली बडी सरल है। इसमें न्याय में विलम्ब नहीं किया जाता है। कुछ समय पूर्व ब्रिटिश न्याय-प्रणाली में भी पर्याप्त विलम्ब होता था। इस दोष को शीघ्र ही दूर किया गया। १८८१ में एक ग्यारह सदस्यीय समिति बनाई गई। इसको कानून समिति के नाम से पुकारा गया। इस समिति में लार्ड चान्सलर, ६ अन्य न्यायाधीश तथा चार वकीलों को नियुक्त किया गया। इस समिति ने न्याय-पद्धति की जटिलता को दूर करने के अनेक नियम बनाये। इससे कार्य-प्रणाली बड़ी सरल हो गई। यद्यपि इस समिति द्वारा निर्मित प्रणाली पर संसद की स्वीकृति आवश्यक होती है परन्तु यह स्वीकृति सदा मिल जाती है। संसद कभी भी इसका विरोध नहीं करती है। यही कारण है कि ग्रेट ब्रिटेन में न्याय-कार्य की पद्धति पर विवाद नहीं खड़े होते हैं। वहाँ की प्रणाली सुबोध एवं सरल है।

(३) निष्पक्ष भावना—ग्रेट ब्रिटेन के न्यायाधीशों में निष्पक्षता की भावना कूट-कूट कर भरी रहती है। यहाँ के न्यायाधीशों पर मन्त्रि-मण्डल का दबाव नहीं रहता है। ब्रिटिश न्यायाधीश आजीवन के लिए नियुक्त रहते हैं, अतः उनको अपनी पदावधि समाप्त होने का भय नहीं रहता है। अमेरिका में न्यायाधीशों का चुनाव किया जाता है। चुनाव निर्धारित अवधि के लिए ही होता है। अतः वहाँ के न्यायाधीश जनता को प्रसन्न रखने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि वे निष्पक्षतापूर्वक निर्णय नहीं दे पाते हैं। ब्रिटेन में इसके विपरीत होता है। अतः यहाँ का न्याय भी अधिक संयत तथा निष्पक्ष होता है।

ग्रेट ब्रिटेन का वकील समुदाय—ग्रेट ब्रिटेन के वकीलों में श्रम करने की परम्परा है। उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम समुदाय को सालिसिटर या एटार्नी कहा जाता है। दूसरी कोटि में बैरिस्टर आते हैं। सालिसिटर अपने मुवक्किलों से मुकदमे लेते हैं तथा उन पर विचार करके मुकदमे की रूप-रेखा तैयार करते हैं। इसके बाद बैरिस्टर मुकदमे की बहस करता है। स्वयं सालिसिटर न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है। इस श्रम-विभाजन से वहाँ का वकील समुदाय पर्याप्त मात्रा में चतुर तथा कुशल विधि-विशेषज्ञ होता है। परन्तु यह प्रथा अत्यधिक व्यय-साध्य है।

लार्ड चांसलर—लार्ड चांसलर न्यायाधिकरण का सर्वोच्च अधिकारी होता है। यह मन्त्रि-मण्डल का भी सदस्य होता है। इसका वार्षिक वेतन १०,००० पौंड होता है। यह विभिन्न न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा पदच्युति करता है। कोर्ट आफ अपील, लार्ड सभा तथा प्रिवी कौंसिल का प्रधान न्यायाधीश यही होता है। इसके साथ ही लार्ड सभा की अध्यक्षता भी यही करता है। इस प्रकार लार्ड चांसलर भी एक बड़ा ही महत्वपूर्ण अधिकारी है।

विधि का शासन
(RULE OF LAW)

प्रश्न—विधि के शासन का क्या आशय है ? इंगलैण्ड की शासन-व्यवस्था में उसका क्या स्थान है ?

अथवा

"विधि का शासन ब्रिटिश संविधान का एक विशिष्ट लक्ष्य है।"—इस कथन की व्याख्या कीजिए।

यदि इङ्गलैण्ड की शासन-व्यवस्था की सर्वप्रमुख विशेषता विधि का शासन कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। विधि का शासन ब्रिटिश राज्य-व्यवस्था का आधार है, वही उसकी न्याय-व्यवस्था का प्राण है और है नागरिकों के अधिकारों का रक्षा-कवच।

विधि के शासन का अर्थ—विधि के शासन की विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न व्याख्याएँ की हैं। लार्ड हेवर्ट ने विधि के शासन का अर्थ बतलाते हुए कहा है कि "व्यक्तियों के अधिकारों के निर्णय में स्वेच्छाचारी या ऐसे ही किसी अन्य प्रकार के ढंग के स्थान पर विधि की सर्वोच्चता का अर्थ विधि का शासन है।"[1]

प्रो० डायसी ने विधि के शासन की एक व्यापक व्याख्या की है। उनके अनुसार विधि के शासन के तीन अर्थ हैं :

(१) "प्रथमतः किसी भी व्यक्ति को विधि के विरुद्ध आचरण करने के दोष को सामान्य न्यायालय में सिद्ध किए गए बिना, किसी भी प्रकार का शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड नहीं दिया जा सकता। इस अर्थ में विधि का शासन उन सभी व्यवस्थाओं के विपरीत है जहाँ सर्व-साधारण की स्वतन्त्रताओं के साथ असीम स्वेच्छाचारिता और मनमाने ढंग से हस्तक्षेप किया जाता है।"[२]

(२) प्रो० डायसी के अनुसार विधि के शासन का दूसरा अर्थ यह है कि "न केवल हमारे यहाँ कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है प्रत्युत यहाँ के सभी व्यक्ति

---

1 "The supremacy or dominance of Law as distinguished from more arbitrariness or some alternature made which is not Law of determining or disposing of the right of individual."

—Lord Hewart.

2. "That no man is punishable or can be lawfully made to suffer in body or goods except for a distinct breach of law estab-

अपने पद और अवस्था के बावजूद भी देश की सामान्य विधि के अधीन हैं तथा यहाँ के सभी नागरिक किसी भी सामान्य न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आ जाते हैं।

"Not only with us is no man above the law, but (what is a different thing) here every man, whatever be his rank on condition is subject to the ordinary law of the realm and amenadle to the jurisdiction of the ordinary tribunals." —**Dicey**

(३) तीसरे, संविधान के सामान्य सिद्धान्त उन न्यायिक निर्णयों के फल हैं जिन्हें न्यायपालिका ने समय-समय पर प्रतिपादित किया है तथा जिनके द्वारा नागरिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षा की गई है।'

"The general principle of the constitution or with us the result of the judicial deoisiens determining the rights of private persons in particular cases brought before the courts —**Dicey**

इस प्रकार यदि प्रो० डायसी के अनुसार विधि के शासन के अर्थ को संक्षिप्त रूप में स्पष्ट किया जाय तो हम कह सकते हैं कि विधि के शासन का प्रथम अर्थ यह है कि इङ्गलैण्ड में विधि ही सर्वोच्च है। स्वेच्छाचारिता के लिए कोई स्थान नहीं है। दूसरे प्रत्येक व्यक्ति विधि के आधीन है तथा प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह विधि का पालन करे। तीसरे विधि का शासन संसद की प्रभुसत्ता का आधार है।

विधि के शासन की सीमाएं—प्रो० डायसी ने विधि के शासन की जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इङ्गलैण्ड की राज-व्यवस्था किस प्रकार पूर्ण रूप से विधि के शासन पर आधारित है। किन्तु वर्तमान समय में विधि का शासन उस स्थिति में नहीं रह गया है जिस स्थिति में कि वह पहले था। अब उस पर अनेक सीमाएँ आ गई हैं और एक दृष्टि से वह ह्रासोन्मुख है। उसके कई कारण हैं।

प्रथमतः आधुनिक युग में प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) का अत्यधिक विकास हुआ है। इस विकास के कारण मुख्यतया अग्रलिखित हैं :

---

lished in the ordinary courts of the land. In this sense the rule of law is contrasted with every system of government based on the exercise by persons in authority of wide, arbitrary or discretionary powers of constraints." —**Dicey**

(१) इङ्गलैण्ड में प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation) का अत्यधिक विकास हुआ है। प्रदत्त व्यवस्थापन के कारण सरकारी अधिकारियों को विधायन के क्षेत्र में अनेक अधिकार मिल गए हैं।

(२) 'बीसवीं शताब्दी के प्राथमिक दर्शकों ने ऐसे अनेक कानून बनाये हैं जिन्होंने सरकारी पदाधिकारियों की शक्ति में वृद्धि की है। इन कानूनों में मुख्य निम्नलिखित हैं :

(१) १६०२ का शिक्षा अधिनियम
(२) १६१६ का विल अधिनियम
(३) १६१२ का राष्ट्रीय अधिनियम
(४) १६३३ का सार्वजनिक अधिकारों का अधिनियम।

(३) इङ्गलैण्ड में प्रदत्त व्यवस्थापन के साथ ही साथ प्रशासकीय न्याय (Administrative Justice) का भी प्रचलन है। प्रशासकीय न्याय से भी विधि के शासन के सिद्धान्त पर आँच आई है।

ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था

(१) व्यवहार न्यायालय

लार्ड सभा
(राष्ट्र का सर्वोच्च न्यायालय)
↓
अपील न्यायालय
|
उच्च न्यायालय
|
- उच्च न्यायालय के दौरा न्यायालय
  - क्वार्टर सेशन्स
  - काउण्टी न्यायालय
- सम्राट की न्याय मण्डली
- चान्सरी विभाग
- प्रोवेट, विवाह-[illegible] तथा ऐडमिरेल्टी
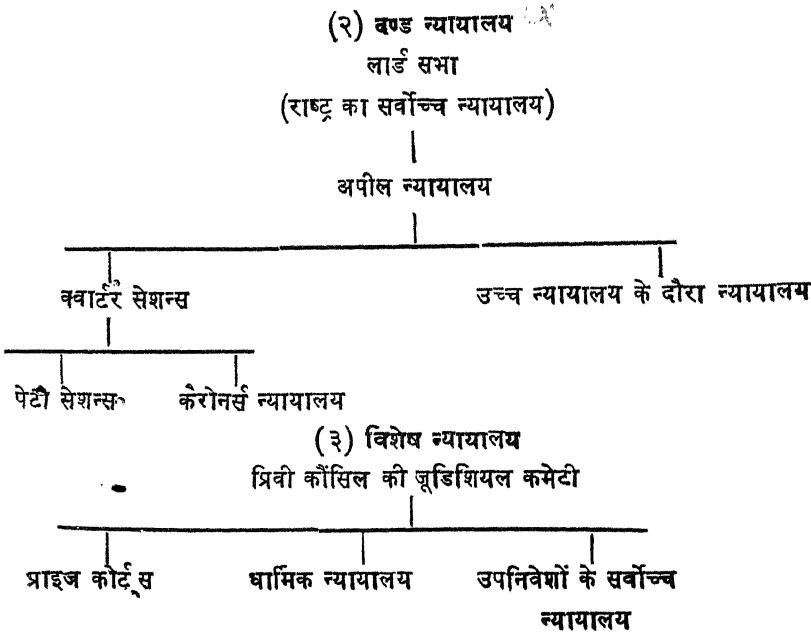
अध्याय | १०

स्थानीय स्वशासन

प्रश्न—ग्रेट ब्रिटेन के स्थानीय स्वशासन पर प्रकाश डालते हुए केन्द्रीय शासन तथा स्वशासन के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।

आज से बहुत पहले प्रसिद्ध राजविज्ञ डी टाकविल ने स्थानीय संस्थानों की महत्ता को व्यक्त करते हुए कहा था कि स्वाधीन राष्ट्रों की सफलता का रहस्य उनके स्थानीय संघों में निहित होता है।

परिचय-सूत्र—स्वाधीनता के लिए नगर-सभाओं का वही महत्व होता है जो विद्वानों के प्रशिक्षण में प्राथमिक विद्यालयों का होता है । स्थानीय संस्थान स्वाधीनता को जनता के अधिकार में लाकर यह सिखलाते हैं कि किस प्रकार उसका उपयोग हो, किस प्रकार उसका आनन्द उठाया जाय, कोई भी राष्ट्र भले ही स्वाधीन राष्ट्रीय व्यवस्था का सृजन कर ले परन्तु स्थानीय संस्थानों को सशक्त बनाये बिना वह स्वाधीनता की चेतना नहीं पा सकता है । इस प्रकार स्थानीय स्वशासित संस्थाओं का अपना महत्व होता है । यदि स्थानीय स्वशासित संस्थाओं को प्रतिनिधिक प्रशाशन तन्त्र की आधार-शिला कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी । ये स्थानीय संस्थान प्रजा की वे प्रारम्भिक पाठशालाएँ हैं जिनमें प्रशासित होकर नागरिक अपने महत्तर दायित्व के निर्वाह के लिए सक्षम होते हैं । ये वे पाठशालाएँ हैं जिनमें प्रजातन्त्र के प्रारम्भिक प्रयोग किये जाते हैं । उनके माध्यम से नागरिकों में उदात्त नागरिक गुणों का विकास होता है । यही नहीं प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से भी स्थानीय संस्थानों का अपना महत्व होता है । विकेन्द्रीकरण के इस युग में वे संस्थाएं जिनका सम्बन्ध क्षेत्र या स्थान विशेष से होता है, उस स्थान विशेष के नागरिकों द्वारा संचारित होकर प्रगति ही पथ पर बढ़ सकती है ।

सर टी० अर्स्काइन मे ने कहा है कि संसार में इंगलैण्ड ही अकेला देश है जिसने शताब्दियों से संवैधानिक नीति का अनुगमन किया है और उसकी स्वतन्त्रता का मुख्य श्रेय उसकी स्वतन्त्र स्थानीय संस्थाओं को है । *

स्थानीय स्वशासित संस्थानों का विकास—ग्रेट ब्रिटेन के स्थानीय संस्थान एक लम्बे विकास के प्रतिफल हैं । सुदूर अतीत में ही ब्रिटेन में स्थानीय संस्थाओं का उदय हो गया था । ऐंग्लो सेक्शन काल तो स्थानीय संस्थानों की दृष्टि से ब्रिटिश इतिहास का स्वर्णयुग कहलाता है । इस समय ब्रिटिश निवासी का सभ्य जीवन या तो स्वतः अथवा उसके प्रतिनिधियों द्वारा निर्देशित होता है । कालान्तर में इन स्वशासित संस्थानों पर भी देश-काल एवं परिस्थितियों की छाया पड़ी । स्थानीय स्वशासित संस्थाओं के इतिहास में दूसरे युग का प्रारम्भ हुआ । यह युग नार्मन विजय से लेकर १४ वीं शताब्दी तक फैला हुआ है । यह समय स्थानीय संस्थानों की शक्ति के ह्रास का समय था । तीसरा युग १४ वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है और गौरवपूर्ण क्रांति

* "England alone among the nations of the earth has maintained for centuies a constitutional policy; and her liberties may be ascribed above all things to her free local institutions."

—Sir T. Erskine May

तक चलता है, इस समय स्थानीय संस्थानों के पुनर्गठन का प्रयास किया गया। चौथे युग का प्रारम्भ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होता है और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरणों तक चलता है। इस समय औद्योगिक क्रांति ने राष्ट्र के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को नई दिशा दी। फलतः स्थानीय संस्थानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इस युग के उपरान्त स्थानीय संस्थानों के नवगठन के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गए। १८३५ ई० में 'म्युनिसिपल कारपोरेशन ऐक्ट' पारित हुआ। इस अधिनियम ने इङ्गलैण्ड में बरो की व्यवस्था को सुगठित करने का प्रयास किया। सन् १८८८ ई० में 'लोकल गवर्नमेंट ऐक्ट' पारित हुआ। इस अधिनियम का उद्देश्य काउन्टी प्रशासन को पुनर्गठित करना था। इन अधिनियमों के अतिरिक्त १९२९ ई०, १९३३ ई० तथा १९४६ ई० में कई अन्य अधिनियम पारित हुए, जिन्होंने ब्रिटेन के स्थानीय स्वशासन को सुव्यवस्थित किया।

ब्रिटेन के स्थानीय स्वशासन की रूप-रेखा—वर्तमान समय में सारा देश स्थानीय स्वशासन की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभक्त है :—

१—काउण्टी

२—काउण्टी बरो

३—बरो अथवा म्यूनिसिपल बरो

४—अरबन डिस्ट्रिक्ट

५—रूरल डिस्ट्रिक्ट

६—पैरिश

इस समय देश में काउण्टियाँ है। समस्त काउण्टियों को अरबन तथा रूरल डिस्ट्रिक्ट में विभक्त किया गया है। अरबन डिस्ट्रिक्ट ५७२ तथा रूरल डिस्ट्रिक्ट ४७५ हैं। उन सभी जिलों को पैरिशों में विभक्त किया गया। पैरिशों की भी दो कोटियाँ हैं—एक को अरबन पैरिश तथा दूसरे को रूरल पैरिश कहा जाता है।

निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा :—
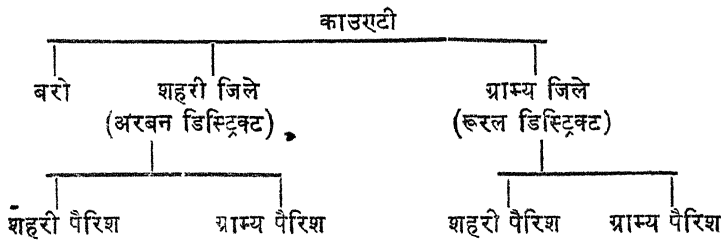
काउण्टियों का प्रशासन—काउण्टियों का प्रशासन एक निर्वाचित समिति

द्वारा किया जाता है। इस समिति का चुनाव होता है। चुनाव की प्रक्रिया तथा उसकी आवश्यक अर्हताएँ संसद के निर्वाचन की भाँति ही हैं। इन समितियों में दो प्रकार के सदस्य होते हैं, जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से चुनकर आते हैं, ऐसे सदस्य को कार्उान्सिलरी कहते हैं। दूसरी कोटि के सदस्य काउन्सिलरों द्वारा चुने जाते हैं। सभी काउन्सिलरों के आधे की संख्या में दूसरे सदस्य चुने जाते हैं। इनको आल्डरमेन कहते हैं। आल्डरमेन या तो काउन्सिलरों में से चुने जाते हैं अथवा बाहर से। यदि कोई काउन्सलर आल्डरमैन हो जाता है, तो उसका काउन्सलर का पद रिक्त हो जाता है। अतः पुनः उपचुनाव द्वारा उस स्थान की पूर्ति की जाती है। इन आर्ल्डरमैनों की पदावधि ६ वर्ष होती है परन्तु प्रति दूसरे वर्ष आधे सदस्य पद-मुक्त हो जाते हैं तथा उनके स्थान पर नवीन सदस्य चुन लिए जाते हैं।

इस प्रकार दोनों तरह के सदस्यों का निर्वाचन होने के बाद एक सभापति चुना जाता है। सभापति अपने सदस्यों में से अथवा बाहर से चुना जा सकता है। बाहर से चुनकर आने वाले व्यक्ति को सभा की सदस्यता प्रदान की जाती है। यह सभापति काउन्सिलर बैठक की कार्यवाहियों का संचालन करता है। इनको सभात्मक कार्यवाही संचालन के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का प्रशासन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं है।

काउण्टी कौंसिल के प्रशासन-कार्य

इस कौंसिल को अनेक कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। स्थानीय क्षेत्रों की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए इनके अधिकार भी पर्याप्त मात्रा में विस्तृत हैं। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि अमेरिका की भाँति शक्ति पृथक्त्व का सिद्धान्त यहाँ पर लागू किया गया है। ये काउन्सिलें बनाती हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क-निर्माण, स्थानीय पुलिस, पुल, पागलखानों का प्रबन्ध और इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के लाइसेन्स का नियोजन करना इन्हीं कौंसिलों के अधिकार क्षेत्र में आता है। यहाँ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि इन स्थानीय संस्थाओं की कौंसिलों को संसदीय अधिनियम द्वारा ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। संसद द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सीमा से बाहर कानून बनाने का अधिकार कौंसिल को नहीं है। यदि कोई कौंसिल इसका अतिक्रमण करती है, तो न्यायालय उसके इस कृत्य को अवैधानिक घोषित करके अमान्य ठहरा सकता है।

कौंसिल की कार्य-प्रणाली—यह स्पष्ट है कि स्थानीय संस्थाओं के पास उत्तरोत्तर कार्यवृद्धि होती जा रही है। अतः स्वयं कौंसिल सभी कार्य एक साथ नहीं

कर सकती। इसके लिए प्रत्येक कौंसिल ... मतियों का संगठन किया गया है। प्रत्येक समिति को कोई विभाग सौंप दिया जाता है। कभी कभी एक से अधिक विभाग भी एक ही समिति को सौंप दिये जाते हैं। इस प्रकार अधिकांश विभागीय कार्यों का सम्पादन यही विभिन्न समितियाँ किया करती हैं। समितियों द्वारा निर्मित अथवा प्रस्तावित तथ्यों को कौंसिल की बैठक में प्रस्तुत किया जाता है। बैठक उनको एक-एक करके पारित कर देती है। समितियों की बैठक एक वर्ष के अन्दर सैकडों बार होती है। परन्तु पूरी कौंसिल अधिक से अधिक एक महीने में केवल एक बार एकत्र होती है। समितियों की संख्या कौंसिल की इच्छा पर निर्भर है। कुछ समितियाँ अनिवार्य रूप से बनाई जाती हैं। इन समितियों को स्टेट्यूटरी समितियाँ कहा जाता है। इस प्रकार के सहयोग से सारा स्थानीय शासन संचालित हुआ करता है।

डिस्ट्रिक्ट तथा पैरिश—ऊपर कहा जा चुका है कि समस्त देश में ६१ काउण्टियाँ हैं। किन्तु यह सभी काउण्टियाँ रूरल डिस्ट्रिक्टों द्वारा पैरिश में विभक्त कर दी जाती है। प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट में स्थानीय प्रबन्ध चलाने के लिये एक डिस्ट्रिक्ट काउन्सिल होती है। इस कौंसिल की पदावधि तीन वर्ष होती है। तीन वर्ष के बाद पुनः चुनाव किये जाते हैं। स्वास्थ्य-प्रबन्ध, गृह-निर्माण, स्वच्छता, पीने के पानी की व्यवस्था आदि कार्य इस कौंसिल द्वारा किये जाते हैं।

पैरिश ग्राम के समान होते हैं। जिस पैरिश की जनसंख्या ३०० होती है वहाँ पर भी एक कौंसिल स्थापित की जाती है। इस कौंसिल में १५ सदस्य होते हैं। परन्तु ३०० से कम जन-संख्या वाले पैरिश में किसी प्रकार की कौंसिल नहीं बनाई जाती है। वहाँ पर सभी व्यापक मतदाता एक समिति या सभा के रूप में एकत्र होकर स्थानीय प्रबन्ध के काम किया करते हैं। ग्राम की उन्नति से सम्बन्धित सभी कार्यों का भार इसी पैरिश पर रहता है। ग्राम की स्वच्छता, पथ-निर्माण, सार्वजनिक भवनों की सुरक्षा तथा अन्य उपयोगी कार्य करने के लिए पैरिश ही उत्तरदायी हैं। इस समय इङ्गलैण्ड में लगभग ४१,००० पैरिश हैं।

बरो तथा काउण्टी बरो—बरो तथा काउन्टी बरो को इङ्गलैण्ड की नगरपालिका के नाम से सम्बोधित किया जाता है। बरो निम्न श्रेणी की नगरपालिका कहलाती है। बरो की अधिकार-सीमा सम्बन्धित काउन्टी के अन्तर्गत ही होती है। किन्तु काउण्टी बरो इसकी अपेक्षाकृत कहीं अधिक स्वतन्त्र एवं अधिकार सम्पन्न होती है। १ लाख से जिसकी जन-संख्या कम रहती है, उसे बरो के ही अधिकार मलते हैं। किन्तु एक लाख से अधिक जन-संख्या वाले बरो को काउण्टी बरो का

पद प्राप्त हो सकता है। परन्तु काउण्टी बरो के लिए सम्राट तथा प्रिवी परिषद् से आज्ञा-पत्र प्राप्त करना पड़ता है।

बरो कौंसिल—बरो का भी प्रशासन-सूत्र सम्भालने के लिये एक कौंसिल बनाई जाती है। कौंसिल के सदस्य मतदाताओं द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि काउण्टी कौंसिल का भी संगठन किया जाता है। कौंसिलर आल्डरमेन का चुनाव करते हैं। आल्डरमेन की पदावधि ६ वर्ष होती है। परन्तु कौन्सिलरों की पदावधि ३ वर्ष होती हैं। कौंसिलर तथा आल्डरमैन एक अध्यक्ष का भी चुनाव करते हैं। अध्यक्ष उन्हीं में से चुना जा सकता है और बाहर से भी। अध्यक्ष को मेयर के नाम से अभिहित किया जाता है। मेयर का पद बड़ा ही प्रतिष्ठित एवं सम्मानित होता है। सामाजिक कार्यों में उसकी अध्यक्षता आवश्यक समझी जाती है। यह नगर का सर्वश्रेष्ठ एवं सम्मानित नागरिक माना जाता है। इसे वेतन भी मिलता है। परन्तु सामाजिक कार्यों के लिए चन्दे इत्यादि में इसका व्यय वेतन की अपेक्षा कहीं अधिक हो जाता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि इसको प्रशासन सम्बन्धी अधिकार नहीं मिले हैं। यह केवल कौंसिल की सभात्मक कार्यवाहियों का संचालन करता है। बैठक के समय यही सभापतित्व करता है।

कौंसिल समितियाँ—आज प्रत्येक स्थानीय संस्था के पास कार्य की बहुलता, प्रशासन की जटिलता एवं उत्तरदायित्वों की गुरुता बढ़ गई है। अतः सम्पूर्ण कौंसिल इस कार्यभार को एक साथ सम्भाल नहीं पाती है। फलतः समितियों का सङ्गठन कर दिया गया है। इन समितियों की संख्या निश्चित नहीं है। आवश्यकतानुसार १० से लेकर ३० तक समितियाँ बनाई जाती हैं। समितियों द्वारा प्रदत्त निर्णय कौंसिल द्वारा प्रायः स्वीकार कर लिया जाता है। यद्यपि कौंसिल को संशोधन, परिवर्तन या परिवर्द्धन का महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है तथापि वह इसको वैसा ही स्वीकार कर लेती है।

बरो कौंसिल के अधिकार—कार्य का सम्यक् सम्पादन करने के लिए प्रत्येक प्रशासनिक संस्था के कुछ अधिकार होते हैं। बरो कौंसिल भी इसका अपवाद नहीं है। इसको भी अनेक अधिकार प्राप्त हैं। संक्षेप में हम इसके अधिकार क्षेत्र को मुख्य तीन क्षेत्रों में बाँट सकते हैं :—

(१) **नियम-निर्माण सम्बन्धी अधिकार**—इसके अन्तर्गत कौंसिल बरो से सम्बन्धित अनेक उपनियमों का सृजन कर सकती है। स्वास्थ्य, रक्षा, शिक्षा आदि से सम्बन्धित कार्यों के लिए यह उपनियम बना सकती है। परन्तु संसदीय नियमों से विपरीत यह कौंसिल कुछ भी नहीं बना सकती है।

(२) **आर्थिक**—कौंसिल कर लगाने का उपक्रम करती है। वार्षिक आय-व्यय पत्रक को भी स्वीकृत करती है। स्थानीय कर वसूल करने का कार्य भी इसी के हाथ में रहता है।

(३) **प्रशासन सम्बन्धी अधिकार**—स्थानीय प्रशासन सम्बन्धी अधिकार भी इसको उपलब्ध है। कर्मचारियों की नियुक्ति, शासन सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण तथा दैनिक कार्यों का नियोजन इसी के हाथों में निहित है।

नगरपालिका के कर्मचारी—कोई भी नगरपालिका कर्मचारियों के अभाव में शासन-तंत्र का संचालन नहीं कर सकती है। बरो में स्थायी कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। सामान्य कर्मचारियों से लेकर ऊँचे पदाधिकारियों तक की आवश्यकता पड़ती है। अतः उस नगरपालिका में भी काउन्टी क्लर्क (सेक्रेटरी), कोषाध्यक्ष, सर्वेयर तथा स्वास्थ्य पदाधिकारियों को नियुक्त किया जाता है। यहाँ के कर्मचारियों की नियुक्ति में प्रतियोगात्मक परीक्षा का विधान नहीं है। परन्तु योग्यता का सामान्य मूल्यांकन किया जाता है। सामान्य कर्मचारियों की नियुक्ति विभागाध्यक्ष अथवा सम्बन्धित समिति करती है। कर्मचारियों का पद आजीवन रहता है। यदि वे किसी का गुरुतर अपराध या भूल नहीं करते हैं, तो उनका पद चिरस्थायी रहता है। कतिपय कर्मचारी ऐसे होते हैं जिनको कौंसिल भी पदच्युत नहीं कर सकती है। वे कर्मचारी पार्लियामेन्ट की सहमति द्वारा ही पदच्युत किये जा सकते हैं।

ब्रिटेन में स्थानीय प्रशासन कार्य को ठीक प्रकार से चलाने के लिए कर्मचारियों को सरकार की तरफ से प्रशिक्षण दिया जाता है। शिक्षा संस्थानों में विभिन्न रीति से प्रशासन सम्बन्धी पाठ्यक्रम भी पढ़ाया जाता है, इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की भी संस्थाएँ इन कर्मचारियों की माँग पूरी करती हैं। नालगों का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

प्रत्येक सरकार वैयक्तिक मामलों में अधिक से अधिक हस्तक्षेप करती जा रही हैं। ग्रेट ब्रिटेन की स्थानीय संस्थाएँ कुछ समय पूर्व पूर्ण स्वतन्त्र थीं यद्यपि केन्द्रीय सरकार स्थानीय प्रशासनों को निश्चित अधिकार देती थी. परन्तु उनके अतिरिक्त-कार्य कलापों में बाधा नही पहुँचाती। इससे लाभ कम किन्तु हानि बहुत थी।

केन्द्रीय शासन का नियन्त्रण—कुव्यवस्था पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न था। स्थानीय संस्थाएँ मनमाने ढंग से कार्य करती थीं। परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रही। १८३५ ई० में इसका अन्त किया गया। अन्त के साथ ही केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण भी स्थापित किया गया। केन्द्रीय सरकार ने स्थानीय संस्थाओं

को निवास-कार्यों, स्वास्थ्य, शिक्षा, गृह-निर्माण, यातायात के लिए धन दिया। इसके साथ ही केन्द्र का नियन्त्रण पूर्ण रीति से हो गया। इस समय स्थानीय सरकार को व्यय की लगभग ४० प्रतिशत धनराशि केन्द्र से ही मिलती है। अतः दोनों सरकारें परस्पर मिल गई हैं। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि इन दोनों के अधिकार और कर्तव्य निश्चित है। फलतः प्रतिद्वन्दिता का अभाव है। यहाँ यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि स्थानीय स्वशासन का नियंत्रण किसी एक विभाग में निहित नहीं है। अपितु वह अनेक विभागों तथा उसके अध्यक्षों के अधिकार में है। उदाहरण के लिए उसे इस प्रकार रक्खा जा सकता है :—

स्थानीय	केन्द्रीय
१—शिक्षा	शिक्षा मन्त्रालय द्वारा
२—पुलिस	गृह-मन्त्रालय द्वारा
३—कृषि	कृषि विभाग द्वारा
४—अर्थ-व्यवस्था	राजकोष विभाग द्वारा

इस प्रकार इङ्गलैण्ड में विभिन्न विभाग अपने सम्बन्धित विभागों पर नियंत्रण रखते हैं। कुछ समय पूर्व स्वास्थ्य विभाग का नियन्त्रण-क्षेत्र अधिक व्यापक था। वह हिसाब-किताब, अधिकार-वृद्धि, सीमा-परिवर्तन, ऋण स्वीकृति आदि पर नियन्त्रण रखता था। परन्तु १९५१ ई० में इसकी बहुमुखी अधिकारपरता को समाप्त कर दिया गया।

इसके अतिरिक्त प्रिवी कौंसिल, न्यायालय एवं पार्लियामेन्ट भी इनके प्रशासन नियन्त्रित किया करते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार स्थानीय शासन के सभी अंगों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। संक्षेप में इस नियन्त्रण के प्रमुख कारणों को इस प्रकार रक्खा जा सकता है :—

(१) **नियम-निर्माण**—स्थानीय शासन केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित नियमों से चलता है। संसदीय नियम का उल्लंघन स्थानीय सरकार नहीं कर सकती। अतः यह नियमाधीन है।

(२) **प्रस्ताव-स्वीकृति**—स्थानीय शासन केन्द्रीय सरकार के विभिन्न प्रस्तावों पर केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति अपेक्षित है। इन प्रस्तावों में ऋण लेने का प्रस्ताव प्रमुख है।

(३) **सूचना-प्राप्ति**—केन्द्रीय सरकार स्थानीय सरकार से सभी आवश्यक सूचनाएँ तथा महत्वपूर्ण प्रपत्र प्राप्त करती है।

(४) निरीक्षण—पहले ही कहा जा चुका है कि केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभाग अपने से सम्बन्धित तथा स्थानीय विभागों के कार्यों का सतर्कतापूर्वक निरीक्षण करते हैं।

(५) कार्य-संपादन का आदेश—स्थानीय सरकारें यदि किसी कार्य का सम्पादन समुचित ढंग से नहीं करती है, तो केन्द्रीय सरकार उन्हें निश्चित समय में उस कार्य को पूर्ण करने का आदेश दे सकती है। यदि कार्य उस समय तक पूर्ण नहीं किया जाता है, तो उसको केन्द्रीय सरकार स्वयं पूरा करवा लेती है।

(६) नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार—केन्द्रीय सरकार कर्मचारियों के हितों का संवर्द्धन करने के लिए भी कुछ नियम बनाती है। कर्मचारियों की योग्यता का निर्धारण किया जाता है। योग्यता सम्बन्धी शर्तों की पूर्ति होने तक उन्हें किसी भी प्रकार से निलंबित अथवा पदच्युत नहीं किया जाता है।

उपर्युक्त साधनों द्वारा प्रत्यक्ष नियन्त्रण तो केन्द्रीय सरकार का होता है। इसके अतिरिक्त धन प्रदान करने के कारण अनेक रूप से केन्द्र का नियन्त्रण बना रहता है। परामर्श द्वारा अभीष्ट कार्य को करवा लिया जाता है। यदि केन्द्रीय सरकार की आज्ञाओं का उल्लंघन स्थानीय सरकार करती है, तो केन्द्र उसे धन न देने की धमकी दे सकती है। अतः इस धमकी के भय से स्थानीय सरकार चुपचाप केन्द्रीय आज्ञाओं का पालन करती है। इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय सरकार किसी भी स्थानीय सरकार का विघटन नहीं कर सकती है।

उपर्युक्त विवरणों से स्थानीय प्रशासन व्यवस्था के सभी तथ्यों पर प्रकाश पड़ जाता है। स्थानीय शासन अपनी उत्तमता के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु इङ्गलैण्ड में प्रशासन का विभाजन असंगत है। किसी निश्चित नियम के अन्तर्गत इनका विभाजन नहीं किया गया है। पैरिश, डिस्ट्रिक्ट तथा काउण्टी आदि का विभाजन जनसंख्या के अनुपात पर नहीं है। किसी काउण्टी की जनसंख्या आधे लाख से भी कम है तथा किसी की जनसंख्या १० लाख से भी अधिक है। अतः इस विषमता को समाप्त करने के लिए संसद ने स्थानीय सीमा आयोग अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार सीमाओं का पुनर्विभाजन करने का प्रयास किया गया। इस आयोग ने सीमा सम्बन्धी विषमताओं का गंभीरतापूर्वक पर्यवेक्षण किया। १९०७ ई० में इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन-पत्र प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन-पत्र में सीमा में आमूल-चूल परिवर्तन का प्रस्ताव किया गया। इसके साथ ही वर्तमान विभाजन-प्रणाली को भी समाप्त करने का तथ्य सामने रक्खा गया। केवल काउण्टी तथा डिस्ट्रिक्टों की स्थापना पर जोर दिया गया। अरबन तथा रूरल का भेद समाप्त किया गया। बरो का अस्तित्व

समाप्त करने की बात भी सामने आई। किन्तु बहुविधि परिवर्तन की माँग से प्रतिफलित यह प्रतिवेदन लागू न किया गया। केवल यही नहीं १९४९ ई० में सीमा आयोग को ही समाप्त कर दिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि स्थानीय सरकारें अपने में परिवर्तन नहीं लाना चाहती हैं क्योंकि इससे उनका स्वार्थ बनता है। इसके साथ ही किसी भी दल की केन्द्रीय सरकार अपने को अप्रिय बनाने वाला कार्य क्यों करेगी। यदि परिवर्तन होगा भी तो परिस्थितियों के अनुसार स्वतः हो जायगा। यह याद रखना चाहिए कि अंग्रेज जाति विश्व में सबसे अधिक रूढ़िवादी एवं परम्पराप्रिय हैं। अतः वह किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहती।

सार संक्षेप

(१) किसी भी प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन का अपना महत्व होता है। ये स्थानीय संस्थान प्रजातन्त्र के प्रथम विद्यालय होते हैं जहाँ पर प्रशिक्षित होकर नागरिक अपने वृहत्तर दायित्व के निर्वाह के लिए सक्षम होते हैं।

(२) ग्रेट ब्रिटेन के स्थानीय स्वशासन का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। स्थानीय स्वशासन के संगठन एवं व्यवस्था के लिए समय-समय पर अनेक विधियों का निर्माण हुआ है जिसमें १८३५, १८८८, १८९४, १९२९, तथा १९३३ ई० के अधिनियम उल्लेखनीय हैं।

(३) स्थानीय स्वशासन की दृष्टि से सारा देश निम्नलिखित भागों में विभक्त है :—

(१) काउण्टी, (२) काउण्टी बरो, (३) बरो अथवा म्यूनिसिपल बरो, (४) अरबन डिस्ट्रिक्ट, (५) रूरल डिस्ट्रिक्ट (६) पैरिश।

(४) ये स्थानीय संस्थाएँ अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतन्त्र हैं परन्तु कई दृष्टियों से केन्द्र उन पर अपना नियन्त्रण रखता है।

आवृत्ति के लिए अन्य प्रश्न

(१) ब्रिटेन के स्थानीय स्वशासन की विभिन्न इकाइयों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

(२) लन्दन के स्थानीय स्वशासन के विषय में आप क्या जानते हैं ?

उत्तर—लन्दन की स्थानीय व्यवस्था ब्रिटेन की अन्य स्वशासित संस्थाओं से भिन्न है। प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से लन्दन को तीन अंगों में विभक्त किया जा सकता है—(१) लन्दन शहर (२) लन्दन मेट्रोपालिटन जिला, और (३) लन्दन काउण्टी।

लन्दन के प्राचीन शहर का क्षेत्रफल केवल एक वर्गमील है। यही लन्दन नगर निगम का प्रशासकीय क्षेत्र है। इसकी व्यवस्था लार्ड मेयर तथा तीन परिषदों द्वारा होती है। ये परिषदें हैं—(१) कोर्ट आफ आल्डरमेन, (२) कोर्ट आफ कॉमन काउन्सिल, (३) कोर्ट आफ कॉमन हाल। लन्दन शहर २६ वृत्तों में विभक्त है जिसके लगभग २७०० मतदाता हैं जिनको मतदान का अधिकार उनकी सम्पत्ति विषयक अर्हताओं के कारण प्राप्त हैं। लार्ड मेयर को विशेष प्रशासकीय कृत्य नहीं करने पड़ते किन्तु उनका पद बड़ी प्रतिष्ठा एवं महिमा का है।

लन्दन काउण्टी का क्षेत्रफल ११७ वर्गमील है जिसमें २८ मैट्रोपालिटन बरो काउन्सिल हैं। काउण्टी का प्रशासन एक काउण्टी परिषद् द्वारा होता है। प्रत्येक मैट्रोपालिटन बरो के प्रबन्ध के लिए कुछ सभासद, विशिष्ट सभासद तथा एक मेयर होता है।

लन्दन मैट्रोपालिटन जिला लगभग ७०० वर्गमील में फैला हुआ है। इसका कार्य-क्षेत्र पुलिस व्यवस्था तक ही सीमित है।

अध्याय | ११

राजनैतिक दल

प्रश्न—ग्रेट ब्रिटेन में राजनैतिक दलों के संगठन पर प्रकाश डालिए।

पूर्वाभास—आधुनिक लोकतंत्रात्मक प्रशासन व्यवस्था में राजनैतिक दलों की अनिवार्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोकतंत्र के सफल संचालन में राजनैतिक दलों का अपना महत्व होता है। दलीय व्यवस्था को यदि लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। राजनैतिक दल महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्रश्नों पर एकमत नागरिकों को एकता में करने तथा शासन को अपने आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए राजनैतिक दलों को लोकतंत्र का आदि-अन्त कहा जाता है। राजनैतिक दलों के अभाव में समग्र रूप से व्यक्तियों को किसी नीति विशेष पर एकमत होने में कठिनाई होगी। वस्तुतः राजनैतिक दल जनता की मौन आकांक्षाओं को मुखरित करते, व्यक्तियों को जटिल राजनैतिक अन्धकार से मुक्त कर आलोक पथ पर अग्रसर करते तथा उन्हें श्रेय, प्रेय एवं पाथेय का ज्ञान कराते हैं।

दल की परिभाषा—राजनैतिक दल विषयक प्रश्न के अन्य पहलुओं पर विचार करने के पूर्व यह जान लेना चाहिये कि राजनीतिक दल से क्या अभिप्राय है। प्रसिद्ध राजविज्ञ एडमंड वर्क के अनुसार राजनीतिक दल ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो किसी राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को आधार मानकर अपना संगठन करते हैं। प्रो० मैकाइवर के अनुसार यह न्यूनाधिक नागरिकों का एक ऐसा संगठित दल है जो समस्त कार्य एक राजनीतिक इकाई के ही रूप में करता है। यह एक ऐसी संस्था है जो किसी सिद्धान्त या नीति के समर्थन में बनाई जाती है और जो संवैधानिक साधनों द्वारा उन सिद्धान्तों या नीतियों के अनुसार शासन-तन्त्र का निर्माण करने की चेष्टायें करती हैं। इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक ही विचारधारा वाले व्यक्तियों के समुदाय का नाम दल है। जैसा कि प्रो० लीकाक ने कहा है कि राजनैतिक दल ऐसी ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियाँ होती हैं जिनका प्रत्येक सदस्य अपनी राजनैतिक सत्ता का कुछ अंश दल को देता है। इस प्रकार सामूहिक रूप से राजनैतिक दल ऐसी शक्ति अर्जित कर लेते हैं जो एक व्यक्ति के लिये अथक प्रयत्नों के बाद भी प्राप्त करना असम्भव होगा।

इस प्रकार लोकतन्त्र में राजनैतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। लार्ड ब्राइस के शब्दों में दलों का अस्तित्व अनिवार्य है। कोई भी विशाल एवं स्वतन्त्र देश उनसे अछूता नहीं है। किसी ने यह बतलाया कि प्रतिनिधिक प्रशासन इनके बिना कैसे कार्य करें। इन अगणित मतदाताओं में व्याप्त विश्रृंखलन के मध्य सुव्यवस्था स्थापित करते हैं। सत्य भी है लोकतन्त्र का चलना दल पर ही निर्भर रहता है। परन्तु राजनैतिक बहुमत स्वतः नहीं बन जाता उसे बनाना पड़ता हैं, उसको संगठित करना होता है। यह कार्य राजनैतिक दल ही करते हैं। यदि राजनैतिक दल न हों तो देश में संगठित बहुमत का भी सृजन न हो। सबके विचार अलग-अलग हों और सामूहिक रूप से व्यक्तियों को शासन-तन्त्र चलाने में कठिनाई हो। उदाहरण के लिए ग्रेट ब्रिटेन की लोक सभा को ले लीजिये। यदि लोक सभा के समस्त सदस्य अलग-अलग विचार वाले हों; किसी भी मन्तव्य पर उनके विचारों का मेल बैठना कठिन हो, तो शासन कैसे चलेगा ? ऐसी स्थिति में समस्त सदस्य अलग-अलग रह जायेंगे, और उनमें मिलजुल कर काम करने की सम्भावना नहीं रहेगी। जैसा कि रेम्जे म्योर महोदय ने कहा है—दल का नेता होने के कारण ही प्रधान मन्त्री को इतनी शक्ति प्राप्त होती है, दल की समान सदस्यता के कारण ही मन्त्रि-मंडल में एकता स्थापित होती है और उसके उद्देश्य में एकरूपता बनी रहती है। लोक सभा में समर्थन करने वाले संगठित दल के कारण ही मंत्रि-मंडल अपना कार्य करता है तथा जब तक दल का बहुमत बना रहता है वह अपना अधिपत्य बनाये रहता है।

हाँ, इस तानाशाही पर एकमात्र अंकुश यही रहता है कि ऐसी कोई भयानक भूल न हो जिसके कारण दल अशक्त हो जाय।

इस प्रकार लोकतन्त्रीय व्यवस्था में राजनैतिक दलों का विशेष महत्व होता है। प्रत्येक लोकतन्त्रीय प्रशासन किसी दल विशेष के व्यक्तियों से निर्मित होता है। बहुमत वाला दल ही नहीं विरोधी दल भी लोकतन्त्रीय व्यवस्था का आवश्यक अंग होता है। इसी कारण ग्रेट ब्रिटेन में विरोधी दल को साम्राज्ञी विरोधी दल के नाम से पुकारा जाता है और उसके नेता को मन्त्रि-मन्डल के सदस्यों की भाँति निश्चित वार्षिक वेतन मिलता है।

राजनैतिक दलों का उद्भव एवं विकास—ब्रिटेन के राजनैतिक दलों के उद्भव एवं विकास का अपना इतिहास है। महारानी एलिजाबेथ प्रथम के राजत्व काल की गोधूलि में महारानी के अधिकारों को लेकर एक विवाद चल रहा था। थूरिटन लोग महारानी के अधिकारों का विरोध कर रहे थे। इस प्रकार ब्रिटिश पार्लियामेंट में दो दल हो गये—एक वह वर्ग जो साम्राज्ञी की असीम सत्ता का समर्थक था, दूसरा वह वर्ग जो संसद की शक्ति पार्लियामेन्ट की शक्ति सम्पन्नता में विश्वास रखता था। स्टुअर्ट शासक जेम्स प्रथम तथा चार्ल्स प्रथम के निरंकुश शासन ने यह खाई गहरी कर दी। गृह-युद्ध के समय यह दोनों दल एक दूसरे के कट्टर दुश्मन हो गये। अब राज्य-सत्ता का समर्थक वर्ग कैवेलियर तथा संसद (पार्लियामेंट) समर्थक वर्ग राउडहेड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परन्तु इस सब में हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि इन दलों की स्थिति आज जैसी न थी और न इनका संगठन ही प्रबल था। ये दल मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्नशील नहीं थे। निर्वाचन की कोई परम्परा नहीं थी। दलों का कोई आर्थिक आधार भी न था। इस प्रकार सुगठित एवं सशक्त दल का अभाव था।

चार्ल्स द्वितीय के राजत्व-काल में कैवेलियर दल सर्वोपरि था परन्तु १६७६ ई० में सम्राट के भाई जेम्स को उत्तराधिकार से वंचित करने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत हुआ। विधेयक के समर्थक सम्राट को नई संसद निमन्त्रित करने (क्योंकि पहली वाली संसद इसी प्रश्न पर निर्धारित कर दी गई थी) के आवेदन करने लगे, उधर इसके विपरीत कुछ ऐसे लोग थे जो विधेयक का विरोध कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि नई पार्लियामेंट बुलाई जाय। विधेयक के समर्थक ये पेटीशनर्स तथा विरोधी अभारर्स कहलाये। विलियम तृतीय के राजत्व में विधेयक के समर्थक ये पेटीशनर्स ह्विवर्ग तथा अभारर्स टोरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। १६८८ ई० की गौरवपूर्ण क्रान्ति के बाद से डेढ़ सौ वर्षों तक ये दोनों दल क्रमशः शासन सँभालते रहे। कालान्तर में इन दलों के नामों में परिवर्तन हुआ। ह्विग दल उदार या लिबरल और टोरी दल

अनुदार या कंजरवेटिव के नाम से अभिहित हुआ। बीसवीं शताब्दी में इङ्गलैंड के राजनैतिक क्षितिज पर एक अन्य सशक्त दल उदय हुआ, वह था श्रमिक दल। यहाँ पर संक्षेप में इन तीनों दलों पर विचार करना समीचीन होगा।

(१) रूढ़िवादी (कन्जरवेटिव) दल—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह दल पुरातनता का पुजारी रहा है। प्राचीन परम्पराओं एवं रूढ़ियों को यथावत् बनाये रखना ही यह दल श्रेयस्कर समझता है। इस दल में पुराने जमींदार, उद्योगपति, लार्ड तथा राजपरिवार के व्यक्ति सम्मिलित हैं। ये लोग प्राचीन व्यवस्था को समाज, शासन तथा देश के लिए अपरिहार्य मान कर चलते हैं, इस मत में सम्राट तथा साम्राज्य एवं उनकी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पर आघात नहीं लगाना चाहिये। लार्ड सभा के अपहृत अधिकारों को पुनः वापस करने के लिए यह दल समय-समय पर प्रयास किया करता है। पुरातन गिरजाघरों की अधिकारपरता का भी विघात यह दल नहीं चाहता। इसके साथ ही वैयक्तिक सम्पत्ति का समर्थन करना इस दल का प्रथम तथा मुख्य उद्देश्य होता है। भारत को स्वायत्त शासन दिये जाने का इस दल ने घोर विरोध किया था। अतः यह कहा जा सकता है कि यह दल औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रबल समर्थक है। इस दल ने विश्व-शान्ति के लिए ब्रिटिश साम्राज्य को ही एकमात्र सहारा माना था।

रूढ़िवादी दल ब्रिटेन का बड़ा ही सम्पन्न तथा सशक्त दल है। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं पर उसका ही प्रभुत्व रहता है। परन्तु इन सब के साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि कभी-कभी यह दल भी पर्याप्त मात्रा में उदार बन गया है। रूढ़िवादी दल दो भागों में विभक्त है। एक वामपंथी तथा दूसरा दक्षिणपंथी कहलाता है। वामपंथी भाग में अधिक उदारता है। सामयिक परिस्थितियों के साथ यह भाग समझौता करने को तैयार रहता है।

लार्ड सेसिल ने अनुदार दल या रूढ़िवादी दल की स्थिति पर विचार करते हुए कहा है कि यह दल भी सुधारवादी है किन्तु सावधानी के साथ इसने समय-समय पर सुधार की कुछ मांगे सामने रखी हैं। उदाहरण के लिए १९४९ ई० में इस दल ने अपनी नीति निर्देशक पत्रिका ब्रिटेन के लिए यही मार्ग (The Right Road for Britain) में यह प्रतिज्ञा की थी कि देश में बेरोजगारी को दूर किया जायगा और शासन लोक कल्याणकारी सेवाओं की ओर अग्रसर होगा।

(२) उदार दल—रूढ़िवादी दल का प्रमुख विरोधी दल उदार दल रहा है। श्रमिक दल की उद्भावना के पूर्व इसी दल का जोरदार अस्तित्व था। उदार दल का दृष्टिकोण विकासवाद की मान्यताओं का पालन करना तथा उसी के अनुकूल शासन-

तन्त्र चलाता रहा है। यह प्राचीन मान्यताओं तथा रूढ़ियों को प्रश्रय नहीं देता था। धर्म, समाज तथा शासन के क्षेत्र में इसने मौलिक परिवर्तन की योजना सामने रक्खी तथा नूतन अनुभवों से देश को प्रगति पर बढ़ने का इसने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसके विचार में वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा उसके विचारों का मूल्यांकन करना मानव का कर्तव्य है। पुरातन परिपाटी को चिर सत्य मानकर उससे ही चिपके रहना अन्ध-परम्परा मात्र है।

वाणिज्य तथा व्यवसाय के क्षेत्र में उदार दल की नीति बहुजन हिताय रही है। इसने लघु उद्योगों को प्रोत्साहित किया तथा सामान्य जनता को भी राजनीति में समान आश्रय दिया। परराष्ट्र नीति के सम्बन्ध में भी इस दल की नीति बहुत ही स्पष्ट रही है। यह साम्राज्य के अन्तर्गत [illegible]त लोगों को अधिकाधिक अधिकार देने के पक्ष में रहा है। यही कारण है कि इस दल ने आयरलैण्ड को स्वायत्त शासन सौंप दिया था। इस अवसर पर रूढ़िवादी दल ने इसका घोर विरोध किया था। परन्तु इस प्रश्न पर उदार दल के कुछ सदस्य रूढ़िवादियों से जा मिले थे। फलतः आयरिश स्वतन्त्रता का प्रश्न अधूरा रह गया था। उदार दल के अन्तर्गत सामान्य, मध्य एवं उच्चकोटि के व्यक्ति सम्मिलित हैं। उदार दल का दृष्टिकोण मध्यमार्गानुयायी है। यह न तो पूर्ण समाजवाद ही चाहता है और न चरम पूँजीवाद का ही समर्थन करता है। कुछ उद्योगों के राष्ट्रीयकरण करने के भी पक्ष में इसका विचार रहा है। परन्तु इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इस दल की रीतियाँ स्पष्ट नहीं हैं। यही कारण है कि इस दल की विशेष प्रगति नहीं हो सकी।

(३) **श्रमिक दल**—ग्रेट ब्रिटेन का यह तीसरा राजनीतिक दल है। यह दोनों दलों की अपेक्षा आधुनिक है। परन्तु कुछ ही वर्षों में इसकी शक्ति बहुत बढ़ गई है। इसकी स्थापना १६०० ई० में हुई थी।

अब इसकी शक्ति पर्याप्त मात्रा में बढ़ गई है। १६३१ ई० तथा १६३५ ई० में इस दल में विभेद हो गया अतः इसको कम स्थान मिले। किन्तु १६४५ ई० में इस दल की सरकार बहुमत से पदारूढ़ हो गई। श्रमिक दल उदार तथा रूढ़िवादी दलों के विरोध का सर्वोच्च परिणाम है। ये दोनों दल पूँजीवाद का परोक्ष अपरोक्ष रूप से समर्थन करते हैं किन्तु श्रमिक दल पूँजीवाद का घोर विरोधी है। यह स्पष्ट रूप से समाजवाद का समर्थक है। बेकारी तथा निर्धनता की समस्या का तत्काल निराकरण करना ही इसका उद्देश्य है। पुरातन परम्परा के स्थान पर नये समाज की रचना करना ही इसका लक्ष्य है। यह लार्ड सभा में आमूल परिवर्तन चाहता है।

समाजवाद के सिद्धान्तों का समर्थन श्रमिक दल नहीं करता है। श्रमिक दल के सत्तारूढ़ होने पर ही भारत को स्वतन्त्रता मिली है। विदेशी सम्बन्धों में इस दल की नीति बड़ी उदार रही है। शस्त्रों का राष्ट्रीयकरण, आर्थिक प्रतियोगिता की समाप्ति, संयुक्त राष्ट्र संघ को अधिक सशक्त बनाना तथा पारस्परिक सह अस्तित्व एवं असहयोग की भावना की वृद्धि करना इसका उद्देश्य रहा है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस दल में नरम तथा गरम दो दल हैं। दोनों दलों की प्रक्रिया में भेद हैं। परन्तु श्रमिक दल शनैः शनैः परिवर्तन के ही पक्ष में है। सहसा परिवर्तन या सुधार करने का यह भी पक्षपाती नहीं है।

विशेष वक्तव्य—इन प्रधान दलों के अतिरिक्त ब्रिटेन में कुछ और भी छोटे-छोटे दल हैं यथा साम्यवादी दल, इस समय शासन-सूत्र श्रमिक दल के हाथ में है और विरोधी दल के रूप में कंजरवेटिव पार्टी समादृत है। लिबरल पार्टी का अस्तित्व धुंधला पड़ गया है। इस प्रकार व्यवहारतः ब्रिटेन में दो ही सशक्त दल हैं—लेबर पार्टी तथा कंजरवेटिव पार्टी।

ब्रिटिश दलों का संगठन—ब्रिटेन के राजनैतिक दलों का संगठन लगभग एक-सा है। अध्ययन की सुविधा के लिए उसको दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है। वह निम्नलिखित हैं :—

(१) **संसदीय दल**—दल के जितने सदस्य सार्वदेशिक निर्वाचन में निर्वाचित कर लिये जाते हैं, उन सभी सदस्यों के समूह को संसदीय दल कहा जाता है। यद्यपि वह संख्या बाहरी दल की अपेक्षा बहुत छोटी होती है, किन्तु प्रभाव में यह दल बहुत ही मान्य होता है। दल के सभी प्रसिद्ध सदस्य इसी संसदीय दल में होते हैं। इस संसदीय दल को भी उप-विभागों में बाँटा जा सकता है :—

(क) **मन्त्रिमण्डल**—यदि दल बहुमत प्राप्त सत्तारूढ़ होता है, तो उसका मन्त्रि-मण्डल बनाया जाता है। मंत्रि-मण्डल में प्रधान मन्त्री अपने दल के प्रमुख तथा सुयोग्य व्यक्तियों को चुन लेता है। विपक्षी दल भी अपनी संसदीय नीति का संचालन अपने छाया मंत्रि-मण्डल से ही किया करते हैं।

(ख) **सचेतक**—प्रत्येक दल में कुछ सचेतक होते हैं। इनका प्रमुख कार्य अपने दल के सदस्यों को सभा में, विशेषकर मतदान के अवसर पर उपस्थित रखना तथा उनको नीति के अनुशासन में रखना है। अनुदार दल में एक मुख्य सचेतक, दो संयुक्त सचेतक तथा १० सचेतक होते हैं। इसी प्रकार श्रमिक दल में एक मुख्य सचेतक, एक उप-सचेतक तथा दस सचेतक रहते हैं। सत्ता दल के सभी सचेतक उच्च पदों पर रहते हैं तथा उनको वेतन भी दिया जाता है। परन्तु विरोधी दल के सचेतक अवैतनिक ही रहते हैं।

(२) **दलों का बाहरी संगठन**—प्रत्येक दल का अपना वाह्य संगठन होता है। वाह्य दल अनेक शाखाओं तथा विभागों में विभक्त रहता है। प्रत्येक का एक केन्द्रीय कार्यालय भी होता है। इस कार्यालय द्वारा सम्पूर्ण देश की दलीय शाखाओं का नियोजन किया जाता है। दलीय अनुशासन कार्यक्रम एवं चुनाव लड़ने की विधि का संचालन यहीं से किया जाता है। वाह्य दल भावी चुनाव की तैयारी करते रहते हैं। संख्या में यह भाग संसदीय दल से बहुत बड़ा होता है। प्रत्येक दल अपने ही निर्वाचन में अत्यधिक विजयी बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की कार्यप्रणाली का आयोजन करता रहता है। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन में निर्वाचन बहुत जल्दी-जल्दी होते हैं। अतः प्रत्येक दल निर्वाचन के लिए पहले से ही तैयार रहते हैं। चुनाव लड़ने के लिए तथा अपने को लोकप्रिय बनाने के लिए निम्नलिखित प्रयोग करते हैं :—

(१) **अपनी नीति का प्रकाशन**—प्रत्येक दल अपनी राष्ट्रीय नीति का प्रकाशन करता है। पुस्तकें, पत्र, लेख एवं समालोचनाएँ आदि प्रकाशित कराई जाती हैं। राजनीतिक दलों के समाचार पत्र भी निकलते रहते हैं। अनुदार दल की डेली टेलीग्राफ-साम्यवादी दल का डेली वर्कर, उदार दल का न्यूज क्रानिकल, श्रमिक दल का डेली हेरोल्ड आदि पत्र निकलते हैं। ये पत्र प्रत्यक्ष रूप से अपने दलों की नीतियों का समर्थन करते हैं।

(२) **नवयुवक संगठन**—प्रत्येक दल अपना एक नवयुवक संगठन भी बनाता है क्योंकि नवयुवकों के सहयोग के अभाव में कोई भी दल कार्य नहीं कर सकता है। ब्रिटेन में निम्नलिखित युवक संगठन हैं :—

अनुदार दल—अनुदार युवक संगठन।

उदार दल—राष्ट्रीय उदार संगठन।

श्रमिक दल—श्रमिक युवक संगठन।

इन विभिन्न युवक संगठनों का प्रभाव विश्वविद्यालयों एवं विद्यालयों में देखा जा सकता है। धार्मिक संस्थान भी इससे निर्युक्त नहीं हैं।

सार संक्षेप

(१) लोकतंत्रीय व्यवस्था में राजनीतिक दलों का विशेष महत्व है। यदि राजनीतिक दलों को ब्रिटेन की प्रशासन-व्यवस्था का हृद् स्थल कहा जाय तो, कोई अत्युक्ति न होगी। लोकतंत्र को जीवित रखने के लिए दलों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

(२) ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिक दल एक क्रमिक विकास के प्रतिफल हैं। पहले उनका उद्भावना कैवेलियर और राउण्डहेड के रूप में हुई। फिर वे ह्विग तथा

टोरी दल के रूप में परिवर्तित हुए। कालान्तर में उन्होंने लिबरल तथा कंजरवेटिव दल का रूप लिया। २०वीं शती में एक नया दल श्रमिक दल (लेबर पार्टी) उदय हुआ जो बाद में ब्रिटेन का एक सशक्त राजनीतिक दल हो गया। आजकल ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार है, कंजरवेटिव पार्टी विरोधी दल के रूप में समादृत है।

(३) प्रत्येक दल का संगठन न्यूधिक रूप से एक-सा है। प्रत्येक दल का लन्दन में एक प्रधान कार्यालय है। यह कार्यालय दल का एक प्रकार से स्नायु केन्द्र होता है।

आवृत्ति के लिए अन्य प्रश्न

(१) द्विदलीय पद्धति से ब्रिटेन को क्या लाभ हुए हैं ? ब्रिटेन में इस पद्धति के स्थायित्व के क्या कारण हैं ?

(२) ब्रिटिश शासन में विरोधी दल के महत्व का वर्णन कीजिये।

इस प्रश्न के उत्तर में विशेषकर अधोलिखित तथ्यों का उल्लेख करिये। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए सशक्त विरोधी दल होना चाहिये। उसे सदैव सजग और सक्रिय रहना चाहिए। ब्रिटिश शासन में विरोधी दल अपरिहार्य है। उसे संस्था तथा गुण दोनों ही दृष्टियों से सशक्त एवं सक्षम होना चाहिए। उसे सदैव सजग और सक्रिय होना चाहिए। ब्रिटिश शासन में विरोधी दल का अपना महत्व है। विरोधी दल साम्राज्ञी का विरोधी दल कहलाता है। उसका भी एक छाया मन्त्रि-मण्डल होता है। ब्रिटेन के विरोधी दल ने राष्ट्रीय संकट के समय राष्ट्रीय सरकार को अपना सक्रिय सहयोग दिया है। इङ्गलैण्ड में विरोधी दल की भूमिका अत्यन्त सक्रिय, सशक्त और रचनात्मक रही है।